श्री मन्मथनाथ गुप्त की अन्य रचनायें

विज्ञान और दर्शन

१. ऐतिहासिक भौतिकवाद (५५० पृ०) आचार्य नरेन्द्रदेव की भूमिका
२. सेक्स से सुख और जीवन (२०० पृ०)
३. अपराध (२५० पृ०) अपराध विज्ञान

आलोचना

४. शरत्चन्द्र (३०० पृ०) जीवनी भी
५. कथाकार प्रेमचंद (७६७ पृ०) जीवनी भी
६. बंगला के आधुनिक कवि (२२५ पृ०)

राजनीति और इतिहास

७. राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास (४०० पृ०)
८. अगस्त क्रान्ति और प्रतिक्रान्ति (२०० पृ०)
९. भारत में सशस्त्र क्रान्ति चेष्टा का रोमांचकारी इतिहास : भाग १,२
१० क्रान्तिकारी की आत्मकथा (५०० पृ०)

उपन्यास

११. ज़िच (२०० पृ०) १९४२ पर
१२. सुहाग (२०० पृ०) मनोवैज्ञानिक
१३. जययात्रा (१७५ पृ०) द्वितीय संस्करण
१४. गुप्तदूत (३२५ पृ०) जासूसी से दिलचस्प
१५. भाभी (२०० पृ०) हिंदू-मुस्लिम दंगा

गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस, दिल्ली में मुद्रित ।

विषय सूची

दो शब्द

प्रेमचंद हिंदी साहित्य की ही नहीं भारतीय साहित्य की सर्वश्रेष्ठ विभूतियों में हैं। उनके महत्व को अब लोग कुछ-कुछ समझने लगे हैं। उनकी मृत्यु के बाद इतने साल हो गये, पर अब भी हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में उन्हीं का नाम सबसे महत्व-पूर्ण है। वे तो मर गये, पर उनके उपन्यासों में उनका जीवन जीता है।

इससे पहले मैं 'कथाकार प्रेमचन्द' नाम से एक विराट पुस्तक लिख चुका हूं, पर वह पुस्तक विद्वानों के लिये है। उस पुस्तक में दर्शन तथा समाज-शास्त्र की दृष्टि से प्रेमचंद के व्यक्तित्व तथा उनके साहित्य का अध्ययन किया गया है। इसलिये साहित्य में रुचि रखने वालों की साधारण, विशेषतः विद्यार्थियों की दृष्टि से इस विषय पर एक पुस्तक लिखने की आवश्यकता थी। उसी की पूर्ति के लिये यह पुस्तक लिखा गई है।

इस पुस्तक के लिखने में मुझे अपने मित्र श्री भुवनेश्वरी प्रताप श्रावास्तव से बड़ी सहायता मिली है। सच तो यह है कि उनकी सहायता के बगैर यह पुस्तक इतनी जल्दी तैयार नहीं हो सकती थी। मेरे मित्र डा० कमल कुल श्रेष्ठ ने जो इन दिनों मेरे साथ रह रहे थे कुछ उपयोगी सुझाव दिये। मैं उनका भी हृदय से आभारी हूं।

११ तिमारपुर रोड
दिल्ली
९ अगस्त १९५९

मन्मथनाथ गुप्त

उपन्यास और उसके तत्व

कहानी और नाटक से उपन्यास पृथक्

यों तो कोई चाहे तो उपन्यास लिखने की परंपरा को महाभारत, रामायण, यहां तक कि वेदों तक, और पाश्चात्य में ग्रीक लेखक हेरोडेटस या उससे भी पीछे ले जा सकता है। किसी-न-किसी रूप में कहानी कहना बहुत पुराना है, इतना पुराना जितना कि बोलना है। पर किसी रूप में कहानी कह लेना ही उपन्यास की रचना करना नहीं है। कहानी तो कविता में कही जा सकती है, पर उपन्यास में कवित्व का स्थान होने पर भी कविता में लिखी गई कहानी उपन्यास पद वाच्य नहीं हो सकती। नाटक के द्वारा भी कहानी कही जाती है, पर उसकी भी निजी शैली और सीमायें हैं। नाटक में मुख्यतः कथोपकथन तथा घटित होने वाली घटनाओं के जरिये से ही कहानी कही जाती है। यह भी कला बहुत प्राचीन है। भारत में इस संबंध में एक सर्वाङ्गपूर्ण शास्त्र मौजूद था कि नाटक किस प्रकार हो, कैसे खेला जाय इत्यादि। भरतमुनि इसके आचार्य माने गये हैं।

आधुनिक उपन्यास छापेखाने की उपज

जिसे हम उपन्यास कहते हैं, वह छापेखाने के आविष्कार के बाद की उपज है। जिस युग में हाथ के द्वारा तैयार नकलों के द्वारा ही साहित्य का प्रचार होता था, उस युग में उपन्यास की

उत्पत्ति या प्रचार अकल्पनीय है। [illegible] के [illegible] कहानी का उपभोग तभी संभव हो सकता है, जब उपन्यास सस्ते भी हों और आसानी से प्राप्त हों।

पहले के युगों में कहानी

पहले के युगों में भी लोग कहानियों के शौकीन थे। पर ये कहानियाँ अधिकांश रूप में धार्मिक अथवा अर्द्धधार्मिक होती थीं। अवश्य कुछ देशों में कहानी कहने वाले विशेष लोग होते थे। ये लोग बाजार में या अन्य किसी सार्वजनिक स्थान में खड़े हो जाते थे और मजमा जमा करके अपनी कहानियां सुनाते थे। अरब तथा अरबी सभ्यता के प्रभाव में जो देश थे, उनमें इस रीति का बहुत प्रचलन था।

कथा की प्रथा

यहां जो कथा कहने की प्रथा थी और है, उसके साथ धर्म का कुछ-न-कुछ संबंध है। यद्यपि इस क्षेत्र में भी कुछ कथा वांचने वाले दूसरे कथा वांचने वालों से अधिक योग्य इस कारण समझे जाते हैं कि उनमें कथा को कह लेने की अधिक योग्यता है और वे अपनी कही हुई बात को अधिक दिलचस्प बना लेते हैं। पर जैसा कि बताया जा चुका है आखिर यह प्रथा धार्मिक ही है। केवल मनोरंजन इसका उद्देश्य नहीं है।

सारंगी पर गाकर कहानी कहने वाले

कथा वांचने वालों के अतिरिक्त हमारे देश में अब भी धर्म से संबंधहीन कहानियों को घूम-घूमकर सारंगी पर सुनाने वाला एक वर्ग मौजूद है। पर एक तो इनकी कहानी कविता के रूप में ग्रथित होती है, दूसरा यदि वे बीच-बीच में दो-चार गद्य के वाक्य कहते भी हैं, तो वह केवल पद्यों को संबद्ध करने के लिये अथवा

उनके स्पष्टीकरण के लिये ही कहते हैं। इसलिये उनकी कही हुई कहानियों को हम उपन्यास की श्रेणी में कदापि नहीं रख सकते।

उपन्यास के लिए जरूरी वातावरण

तो क्या उपन्यास गद्यमूलक कहानी मात्र है? नहीं, उपन्यास की शैली, भाषा, कथानक को पिरोने का ढंग निजी है। वह निश्चित रूप से उस युग की उपज है जब लोगों में साक्षरता का प्रचार अच्छा हो, पुस्तकें आसानी से मिलें और उनके दाम कम हों, साक्षर लोगों को अवकाश मिलता हो कि वे सांस्कृतिक नियामतों का कुछ उपभोग कर सकें, भाषा का एक मानदंड स्थापित हो चुका हो, लोग धार्मिक साहित्य के अतिरिक्त साहित्य को पढ़ने के लिये तैयार हों।

उपन्यास का दायरा वृहत्तर

उपन्यास ही एक ऐसी कला है जिसमें मनुष्य के समग्र जीवन को उसके सारे ब्यौरों में चित्रित करने की चेष्टा की जाती है। जैसा कि ई० एम० फास्टर ने कहा है 'उपन्यास और कलाओं से इस कारण बिलकुल भिन्न है कि वह मनुष्य के गुप्त जीवन को लाकर पाठक के सामने रख देता है, और कोई कला इस बात को इस हद तक कर नहीं पाती। इस कारण कविता, नाटक, सिनेमा, चित्रकला तथा संगीत में वास्तविकता का जो चित्र खींचा जाता है, उससे इसका चित्र बिलकुल भिन्न होता है।' राल्फ फाक्स ने इसी को साफ करते हुए यह कहा है 'अन्य कलाओं में वास्तविकता के ऐसे पहलुओं का चित्रण होता है, जो उपन्यास की पहुँच के बाहर हैं। पर इनमें से कोई भी किसी पुरुष, स्त्री या बच्चे के समग्र जीवन को उस संतोषजनक रूप से चित्रित नहीं कर सकता।'

उपन्यास काव्य, और महाकाव्य

उपन्यास, स्वाभाविक रूप से विषय प्रधान है, इस लिये प्रबन्ध काव्य से इसका बहुत कुछ सामंजस्य है। विषय निर्वाह की दृष्टि से उपन्यास प्रबन्ध काव्य तथा महाकाव्य दोनों के समीप है। उपन्यास में एक ही कहानी कही जाती है, इस कारण सम्बन्ध-निर्वाह भी इसका विशेष गुण है।

उपन्यास एकाधिक व्यक्ति की कहानी

एक ही कहानी का अर्थ एक व्यक्ति की कहानी नहीं है, और न यह अर्थ है कि उस व्यक्ति से निकट तथा प्रत्यक्ष रूप से संबद्ध व्यक्तियों की कहानी हो। बहुत से उपन्यासकार एक खानदान यहां तक कि एक देश को भी अपना विषय बना लेते हैं। ट्रीलाजी या तीन मोटी जिल्दों में भी उपन्यास लिखे गये हैं, जिनमें खानदान या देश की क्रमिक परिणति को दिखलाया गया है। गैल्सवर्दी ने 'फारसाइट सागा' में तथा पर्लबक ने 'गुड अर्थ' में ऐसा ही किया है।

उपन्यास में युग का चित्र

इन उपन्यासों को पढ़ने से उन-उन युगों का जैसा सुन्दर और सर्वाङ्गपूर्ण चित्र हमारे सामने उपस्थित होता है वैसा दस-बीस अच्छे उपन्यास-ग्रन्थों को पढ़ने से भी नहीं होता। इसीलिये यह कहा गया है कि कथा साहित्य में नाम और तिथियों के अतिरिक्त सब सही होता है और इतिहास में नाम और तिथियों के अतिरिक्त कुछ सही नहीं होता। हम यदि इतिहास के सम्बन्ध में इतना अतिरंजित मत लेना स्वीकार न भी करें, तो भी यह तो स्पष्ट है कि बहुत से उपन्यासकार अपने युग का सबसे अच्छा इतिहास अपने उपन्यासों में छोड़ गये हैं।

प्रेमचंद के उपन्यास और इतिहास

मैं इस पहलू पर इस कारण अधिक ज़ोर दे रहा हूँ कि हमारी इस पुस्तक के विषय प्रेमचंद इसी ढंग के उपन्यासकार थे। उनके उपन्यासों में हमें मोटे तौर पर १९२० से लेकर १९३७ तक के युग का बहुत सुन्दर इतिहास मिलता है। शायद बाद के युग इस समय के इतिहास के ब्यौरों को भुला दें, पर प्रेमचंद के उपन्यासों में इस युग का इतिहास हमेशा के लिये लिखा गया।

उपन्यास-कला अपने में आप संपूर्ण

हम फिर उपन्यास की विशेषता पर लौटते हैं, तो देखते हैं कि यह कला अपने में आप संपूर्ण है। संगीत में यदि गला अच्छा हुआ और गायक या गायिका का चेहरा प्रीतिकर हुआ, तो उतने ही से एक ही सुर में गाये गये एक ही गाने के असर में बहुत फर्क आ जाता है। इसी प्रकार नाटक में अभिनय चातुर्य, रंगमंच की सज्जा तथा रोशनी आदि फेंकने वाले की कारीगरी से बहुत अंतर आ जाता है। पर उपन्यास के कथानक को किसी बाहरी तत्व की अपेक्षा नहीं है। इससे उपन्यासकार को ही सारा श्रेय प्राप्त होता है, जो कि नाटककार को प्राप्त नहीं हो सकता। अच्छे-से-अच्छे नाटक रद्दी अभिनेताओं के द्वारा खेले जाने पर निकृष्ट मालूम होते हैं, और रद्दी-से-रद्दी नाटक भी अच्छे अभिनेताओं के हाथ में पड़कर चमक उठता है।

उपन्यासकार पाठक से सीधा बात कर सकता है

उपन्यास की एक विशेषता यह भी है कि जब-तब उप-

न्यासकार पाठक के साथ सीधे-सीधे बात कर सकता है, पर नाटककार ऐसा नहीं कर सकता।

कहानी और उपन्यास

कहानी और उपन्यास में फ़र्क इतना है कि कहानी में जीवन के किसी एक पहलू को ही चुना जाता है, पर उपन्यास का क्षेत्र इससे बृहत्तर होता है, और जैसा कि मैं बता चुका उसकी तो कोई सीमा ही नहीं है। मनुष्य-जीवन के किसी भी पहलू को या बहुत से पहलुओं को उपन्यासकार अपने उपजीव्य के रूप में चुन सकता है।

आधुनिक उपन्यास से क्या आशा की जाती है?

अब तो उपन्यास से यह आशा की जाती है कि वह केवल मनोरंजन का साधन न रहकर चरित्र-चित्रण, ऐतिहासिक ईमानदारी, सामाजिक, मनोवैज्ञानिक गुत्थियों का समाधान, राष्ट्र-निर्माण आदि कितने ही काम करे। यद्यपि बहुत से उपन्यासकारों जैसे एडगर वालेस आदि जासूसी उपन्यासकारों का उद्देश्य केवल मनोरंजन मात्र है, पर ऐसे लोगों के उपन्यास साहित्य से करीब-करीब बाहर ही समझे जाते हैं। अच्छे साहित्यिक उपन्यासकारों में जिन लोगों की आज गिनती है जैसे हमारे देश तक ही सीमित रखें तो रवींद्रनाथ, शरतचंद्र, प्रेमचंद आदि लेखकों ने उपन्यास को कभी भी मनोरंजन का साधन मात्र नहीं समझा।

उपन्यास के ६ तत्व

यह पुस्तक प्रेमचंद पर है, इसलिये यह उचित ही है कि उपन्यास के संबंध में प्रेमचंद के निजी विचार क्या थे, इस पर प्रकाश डाला जाय। पर इसके पहले हम थोड़े से शब्दों

उपन्यास के तत्वों पर विचार कर लें। ऐसा करने से प्रेमचंद के उपन्यास संबंधी विचारों को समझना और भी आसान होगा।

उपन्यास के तत्वों को हम यों गिना सकते हैं—

(१) कथावस्तु
(२) पात्र
(३) कथोपकथन
(४) वातावरण अथवा देशकाल
(५) भाषाविन्यास या शैली
(६) अंतर्गत दर्शन

कथावस्तु

कथावस्तु से उन घटनाओं, क्रियाकलापों, घात-प्रतिघातों से मतलब है जिनके कारण उपन्यास में गति आती है।

पात्र

पात्र उन व्यक्ति या व्यक्तियों को कहेंगे जिनके इर्द-गिर्द कहानी का तानाबाना बुना जाता है।

कथोपकथन

पात्रों की बातचीत को कथोपकथन कहेंगे। मनुष्य कभी कभी अपने आप भी बात करता है, उसे स्वगत कथोपकथन कहते हैं, पर उच्च कोटि के उपन्यासों में स्वगत का अधिक प्रयोग नहीं किया जाता। यह चेष्टा की जाती है कि अन्य उपायों से उस व्यक्ति के असली भाव प्रगट कर दिये जायं

देशकाल

वातावरण या देशकाल उस युग तथा स्थान को लेक

बनता है जहां कथानक विकसित हुआ है। देशकाल बिलकुल काल्पनिक भी हो सकता है। और जैसा कि पहले ही बताया जा चुका कि लेखक में ऐतिहासिक ईमानदारी इतनी हो सकती है कि उसका उपन्यास इतिहास से भी अधिक ऐतिहासिक सच्चाई रखता हो।

शैली

उपन्यासकार जिस प्रकार से तथा जिस पद्धति से अपनी बात को स्पष्ट करना चाहता है, वह उसकी शैली है। इसमें भाषा तो आती ही है, पर इसके अतिरिक्त कौनसी घटना को प्रधानता दी जाय, किस व्यक्ति को किस समय प्रगट किया जाय, कौनसा रहस्य किस समय प्रगट किया जाय, यह सब शैली के अन्तर्गत आता है।

दर्शन

प्रत्येक उपन्यास में एक दर्शन होगा ही, ऐसा आवश्यक नहीं है। पर बहुत गहराई से विचार करने पर यह ज्ञात होगा कि दर्शन का अभाव भी एक तरह का दर्शन है, क्योंकि दर्शन के प्रति उदासीनता का अर्थ जैसा है वैसा चलने दो, या हम न भी चाहें तो क्या कर सकते हैं, इस प्रकार की भनक आ जाती है।

प्रेमचन्द के उपन्यासों का दर्शन

प्रेमचन्द के उपन्यास एक विशेष दर्शन को लेकर चलते हैं। वे मानव-समाज को जिस रूप में पाते हैं, उसी रूप में उसे छोड़ जाने के लिए तैयार नहीं थे। वे उसे बदलना चाहते थे। अवश्य उनके दर्शन में विकास हुआ, और जीवनसंध्या की ओर उनके दर्शन में बहुत मौलिक परिवर्तन हुआ जिस पर हम आगे यथा-स्थान रोशनी डालेंगे।

उपन्यास पर प्रेमचन्द के निजी विचार

अब मैं संक्षेप में यह बताऊंगा कि प्रेमचन्द के उपन्यास संबंधी विचार क्या थे। इस महान् लेखक के विचारों को जानने से उनके साहित्य को समझना आसान होता है। वे लिखते हैं —

उपन्यास की सर्वसम्मत परिभाषा नहीं है

"उपन्यास की परिभाषा विद्वानों ने कई प्रकार से की है, लेकिन यह कायदा है कि जो चीज़ जितनी ही सरल होती है, उसकी परिभाषा उतनी ही मुश्किल होती है। कविता की परिभाषा आज तक नहीं हो सकी। जितने विद्वान् हैं उतनी ही परिभाषायें हैं। किन्हीं दो विद्वानों की रायें नहीं मिलतीं। उपन्यास के संबंध में भी यह बात कही जा सकती है। इसकी कोई ऐसी परिभाषा नहीं है जिस पर सभी लोग सहमत हों।"

उपन्यास मानव-चरित्र का चित्र

"मैं उपन्यास को मानव-चरित्र का चित्रमात्र समझता हूँ। मानव-चरित्र पर प्रकाश डालना और उसके रहस्यों को खोलना ही उपन्यास का मूलतत्व है।"

उपन्यास का मुख्य कर्तव्य

प्रेमचन्द के अनुसार उपन्यास का मुख्य कर्तव्य चरित्र-संबंधी समानता और विभिन्नता—अभिन्नत्व में भिन्नत्व और विभिन्नत्व में अभिन्नत्व दिखाना है।

मानव-गुणों की भी मात्रायें और भेद हैं। प्रेमचन्द का कथन है—'हमारा चरित्राध्ययन जितना ही सूक्ष्म—जितना ही विस्तृत होगा, उतनी ही सफलता से हम चरित्रों का चित्रण कर सकेंगे।' प्रेमचन्द स्वयं बहुदर्शी थे, उन्होंने जीवन में बहुत कुछ

ऊंचा-नीचा देखा था, इसी कारण वे गरीब तथा मध्यवित्त वर्ग के जीवन को चित्रित करने में बहुत सफल हुए। यदि वे स्वयं तजर्बा प्राप्त न करते तो इसमें सन्देह नहीं कि उनका चरित्र-चित्रण इतना मर्मस्पर्शी नहीं हो सकता था।

प्रेमचन्द द्वारा उपन्यासों का वर्गीकरण

उपन्यासों के समूहों तथा उनकी उत्पत्ति पर प्रेमचन्द विचार करते हुए लिखते हैं—

"अब यहां प्रश्न होता है कि उपन्यासकार को इन चरित्रों को अध्ययन करके उनको पाठक के सामने रख देना चाहिए—उनमें अपनी तरफ से काट-छांट, कमीवेशी कुछ न करनी चाहिए, या किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए चरित्रों में कुछ परिवर्तन भी कर देना चाहिए ?"

आदर्शवादी और यथार्थवादी

"यहीं से उपन्यासों के दो गिरोह हो गए हैं। एक आदर्शवादी, दूसरा यथार्थवादी।"

"यथार्थवादी चरित्रों को पाठक के सामने उनके यथार्थ नग्न रूप में रख देता है। उसे इससे कुछ मतलब नहीं कि सच्चरित्रता का परिणाम बुरा होता है या कुचरित्रता का परिणाम अच्छा—उसके चरित्र अपनी कमजोरियां या खूबियां दिखाते हुए अपनी जीवन-लीला समाप्त करते हैं। × × × यथार्थवादी अनुभव की बेड़ियों में जकड़ा होता है और चूंकि संसार में बुरे चरित्रों की ही प्रधानता है—यहां तक कि उज्ज्वल से उज्ज्वल चरित्र में भी कुछ न कुछ दाग-धब्बे रहते हैं, इसलिए यथार्थवादी हमारी दुर्बलताओं, हमारी विषमताओं और हमारी क्रूरताओं का नग्न चित्र होता है, और इस तरह यथार्थवाद हमको निराशावादी बना देता है, मानव-चरित्र पर से हमारा विश्वास हट

जाता है, हमको अपने चारों तरफ बुराई ही बुराई नज़र आने लगती है।

यथार्थवाद के गुणावगुण

"इसमें संदेह नहीं कि समाज की कुप्रथा की ओर उसका ध्यान दिलाने के लिए यथार्थवाद अत्यंत उपयुक्त है, क्योंकि इसके बिना बहुत संभव है, हम उस बुराई को दिखाने में अत्युक्ति से काम लें और चित्र को उससे कहीं काला दिखायें जितना वह वास्तव में है। लेकिन जब वह दुर्बलताओं का चित्रण करने में शिष्टता की सीमाओं से आगे बढ़ जाता है, तो आपत्ति-जनक हो जाता है। फिर मानव-स्वभाव की एक विशेषता यह भी है कि वह जिस छल और क्षुद्रता और कपट से घिरा हुआ है, उसीकी पुनरावृत्ति उसके चित्त को प्रसन्न नहीं कर सकती। वह थोड़ी देर के लिए ऐसे संसार में पहुंच जाना चाहता है, जहाँ उसके चित्त को ऐसे कुत्सित भावों से नजात मिले—वह भूल जाय कि मैं चिंताओं के बंधन में पड़ा हुआ हूँ; जहाँ उसे सज्जन, सहृदय, उदार प्राणियों के दर्शन हों; जहाँ छल और कपट, विरोध और वैमनस्य का ऐसा प्राधान्य न हो। उसके दिल में ख्याल होता है कि जब हमें किस्से-कहानियों में भी उन्हीं लोगों से साबक़ा है जिनके साथ आठों पहर व्यवहार करना पड़ता है, तो फिर ऐसी पुस्तक पढ़ें ही क्यों ?

आदर्शवाद की विशेषता

"अंधेरी गर्म कोठरी में काम करते-करते जब हम थक जाते हैं तो इच्छा होती है कि किसी बाग में निकलकर निर्मल स्वच्छ वायु का आनंद उठायें।—इसी कमी को आदर्शवाद पूरा करता है। वह हमें ऐसे चरित्रों से परिचित कराता है, जिनके हृदय

पवित्र होते हैं, जो स्वार्थ और वासना से रहित होते हैं, जो साधु प्रकृति के होते हैं। यद्यपि ऐसे चरित्र-व्यवहार कुशल नहीं होते, उनकी सरलता उन्हें सांसारिक विषयों में धोखा देती है, लेकिन काँइयेपन से ऊबे हुए प्राणियों को ऐसे सरल, ऐसे व्यावहारिक ज्ञान-विहीन चरित्रों के दर्शन से एक विशेष आनंद होता है।

"यथार्थवाद यदि हमारी आंखें खोल देता है, तो आदर्शवाद हमें उठाकर किसी मनोरम स्थान में पहुंचा देता है। लेकिन जहाँ आदर्शवाद में यह गुण है, वहाँ इस बात की भी शंका है कि हम ऐसे चरित्रों को न चित्रित कर बैठें जो सिद्धांतों की मूर्तिमात्र हों—जिनमें जीवन न हो। किसी देवता की कामना करना मुश्किल नहीं है, लेकिन उस देवता में प्राण प्रतिष्ठा करना मुश्किल है।"

आदर्शोन्मुख यथार्थवाद

"इसलिये वही उपन्यास उच्चकोटि के समझे जाते हैं जिनमें यथार्थ और आदर्श का समावेश हो गया हो। उसे आप 'आदर्शोन्मुख यथार्थवाद' कह सकते हैं। आदर्श को सजीव बनाने ही के लिए यथार्थ का उपयोग होना चाहिये और अच्छे उपन्यास की यही विशेषता है।"

प्रेमचन्द की सम्मति

उनकी सम्मति में चरित्र को 'उत्कृष्ट और आदर्श बनाने के लिये' तथा उसमें सजीवता लाने के लिये 'कमज़ोरियों का दिग्दर्शन कराने से कोई हानि नहीं होती। वल्कि यही कमजोरियां उस चरित्र को मनुष्य वना देती हैं। वे आगे लिखते हैं—'साहित्यकार का काम केवल पाठकों का मन वहलाना नहीं है। × × वह हमारा पथ-प्रदर्शक होता है, वह हमारे मनुष्यत्व को जगाता है, हममें

सद्भावों का संचार करता है, हमारी दृष्टि को फैलाता है। ×× इस मनोरथ के सिद्ध करने के लिए जरूरत है कि उसके चरित्र Positive हों, जो प्रलोभनों के आगे सिर न झुकायें; बल्कि उनको परास्त करें, जो वासनाओं के पंजे में न फँसे बल्कि उनका दमन करें, जो किसी विजयी सेनापति की भाँति शत्रुओं का संहार करके विजयनाद करते हुए ही निकलें। ××××

कला का आदर्श

प्रेमचन्द के अनुसार "साहित्य का सबसे ऊँचा आदर्श यह है कि उसकी रचना केवल कला की पूर्ति के लिए की जाय। कला के लिए कला के सिद्धांत पर किसी को आपत्ति नहीं हो सकती।" पर यह स्मरण रहे कि प्रेमचन्द जब कला-कला के लिए कहते हैं; तो उनके मन में कला की एक आदर्शवादी परिभाषा है जो बाद को स्पष्ट हो जाती है। "वह साहित्य चिरायु हो सकता है जो मनुष्य की मौलिक प्रवृत्तियों पर अवलंबित हो; ईर्ष्या और प्रेम, क्रोध और लोभ, भक्ति और विराग, दुःख और लज्जा—ये सभी हमारी मौलिक प्रवृत्तियाँ हैं, इन्हीं की छटा दिखाना साहित्य का परम उद्देश्य है और बिना उद्देश्य के तो कोई रचना हो ही नहीं सकती।"

उपन्यास में मत का प्रचार

वे स्वीकार करते हैं—"जब साहित्य की रचना किसी सामाजिक, राजनीतिक और धार्मिक मत के प्रचार के लिए की जाती है, तो वह अपने ऊँचे पद से गिर जाता है—इसमें संदेह नहीं।" पर साथ ही साथ वे देशकाल को भूल नहीं जाते हैं। इसी सिलसिले में विचार करते हुए लिखते हैं—"लेकिन आजकल परिस्थितियां इतनी तीव्र गति से बदल रही हैं, इतने

नये-नये विचार पैदा हो रहे हैं, कि कदाचित अब कोई लेखक साहित्य के आदर्श को ध्यान में रख ही नहीं सकता। यह बहुत मुश्किल है कि लेखक पर इन परिस्थितियों का असर न पड़े—वह उनसे आंदोलित न हो। यही कारण है कि आज भारतवर्ष के ही नहीं, यूरोप के बड़े-बड़े विद्वान भी अपनी रचना द्वारा किसी 'वाद' का प्रचार कर रहे हैं। इसकी परवा नहीं करते कि इससे हमारी रचना जीवित रहेगी या नहीं: अपने मन की पुष्टि करना ही उनका ध्येय है, इसके सिवाय उन्हें कोई इच्छा नहीं। मगर यह क्योंकर मान लिया जाय कि जो उपन्यास किसी विचार के प्रचार के लिये लिखा जाता है उसका महत्व क्षणिक होता है? विक्टर ह्यूगो का 'ला मिज़रेबुल' टालस्टाय के अनेक ग्रन्थ, डिकेन्स की कितनी ही रचनायें, विचार-प्रधान होते हुए उच्च-कोटि की साहित्य हैं और अब तक उनका आकर्षण कम नहीं हुआ है। आज भी शा, वेल्स आदि बड़े-बड़े लेखकों के ग्रन्थ प्रचार ही के उद्देश्य से लिखे जा रहे हैं।

कला कला के लिये कब

आगे मानो किसी निष्कर्ष पर पहुंचने के लिये वे प्रश्न कर हैं—"हमारा ख्याल है कि क्यों न कुशल साहित्यकार के विचार-प्रधान रचना इतनी सुन्दरता से करे जिसमें मनुष्य मौलिक प्रवृत्तियों का संघर्ष निभता रहे? 'कला के लिए क का समय वह होता है जब देश संपन्न और सुखी हो। जब देखते हैं कि हम भांति-भांति के राजनीतिक बंधनों में जकड़े हैं, जिधर निगाह उठती है दुःख और दरिद्रता के भीषण दिखाई देते हैं, विपत्ति का करुण क्रंदन सुनाई देता है, तो संभव है कि किसी विचारशील प्राणी का हृदय न दहल उ हाँ, उपन्यासकार को इसका प्रयत्न अवश्य करना चाहिं

उसके विचार परोक्ष रूप से व्यक्त हों, उपन्यास की स्वाभाविकता में उस विचार से विघ्न न पड़ने पाये, अन्यथा उपन्यास नीरस हो जायगा।"

प्रेमचन्द के उपन्यास अमर क्यों होंगे ?

ऊपर दिये गये उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि प्रेमचन्द इस बात को स्वीकार करते हैं कि उपन्यास की रचना का कोई उदात्त उद्देश्य होना चाहिये। उन्होंने अपने उपन्यासों में इसी विचार का अनुकरण किया। यदि उन्होंने 'कला-कला के लिये' नारे का ऊपरी तौर पर समर्थन किया, तो उसके भिन्न अर्थ में ही उन्होंने ऐसा किया। वे कभी भी इस बात को मानते नहीं थे कि उपन्यास का उद्देश्य महज़ मनोरंजन है। यही कारण है कि उनके उपन्यास बहुत चाव से जब तक हिंदी भाषा है, तब तक पढ़े जायंगे।

हिन्दी उपन्यास

इंशाअल्ला खाँ

यह बहुत ही आश्चर्य की बात है कि हिन्दी में प्रथम उपन्यासकार होने का श्रेय एक मुसलमान लेखक सैयद इन्शाअल्ला खाँ को प्राप्त है। इससे यही बात साफ हो जाती है कि हिन्दी हिन्दुओं की भाषा नहीं बल्कि हिन्दू, मुसलमान दोनों की भाषा थी।

रानी केतकी की कहानी

उनकी लिखी हुई पुस्तक 'रानी केतकी की कहानी' हिन्दी का सबसे पहला उपन्यास है। शायद यह उपन्यास १८०० ईस्वी के लगभग का है। यह एक प्रेम कहानी है, पर उस समय के रिवाज के अनुसार इसमें बहुत सी अलौकिक बातों का भी समावेश है। उपन्यास कला की दृष्टि से इस उपन्यास में कोई ऐसी बात नहीं है, जिससे कि यह अब पठनीय समझा जाय। हाँ, इतिहास की दृष्टि से इस उपन्यास को बहुत महत्व प्राप्त है। हिन्दी भाषा का विकास किस प्रकार हुआ इसे जानने के लिये भी यह पुस्तक बहुत उपयोगी है।

श्रीनिवासदास का 'परीक्षा-गुरु'

नाम मात्र के लिने 'रानी केतकी की कहानी' को हिन्दी का पहला उपन्यास मानने पर भी लाला श्रीनिवासदास लिखित

'परीक्षा-गुरु' को ही असल में हिन्दी का पहला उपन्यास माना जाता है। इस पुस्तक में आकर हिन्दी की शैली इतनी निखर चुकी है कि इसे प्रथम उपन्यास का गौरव अपेक्षाकृत रूप से अधिक योग्यता के साथ प्राप्त है। लाला श्रीनिवासदास ने निरी प्रेम कहानी छोड़कर उसमें और बातों को भरने की कोशिश की।

'परीक्षा-गुरु' का कथानक

'परीक्षा-गुरु' का कथानक यह है कि दिल्ली के एक सेठ जी हैं जिनका नाम मदनमोहन है और जो मुसाहबों के चक्कर में आकर अपनी सारी जायदाद तो खो ही डालते हैं, उल्टा कर्ज में फंस जाते हैं। अब इनको एक व्यक्ति मिलता है जो इनको वस्तुस्थिति समझाता है, और बड़ी मुश्किलों से उसके साथियों से उसका उद्धार करता है। कहना न होगा कि यह कथानक कोई ऐसा नहीं है जिस पर कि एक कहानी से अधिक कुछ लिखा जा सके, इसमें न तो वह विस्तार ही हो सकता था और न वह गहराई ही आ सकती थी, जो आधुनिक उपन्यासों में है। लेखक ने अध्ययन तो बहुत किया था, पर इसी अध्ययनशीलता के कारण उनकी रचना बिगड़ी न कि निखरी, क्योंकि उन्होंने उसमें संस्कृत, फारसी, अंग्रेजी आदि के बड़े-बड़े नैतिक वाक्य उद्धृत किये हैं। कहना न होगा कि उपन्यास रचना के संबन्ध में उनकी धारणा बहुत अजीब थी। शायद उन्होंने हितोपदेश को ही अपना आदर्श माना था। फिर भी उस जमाने में 'परीक्षा गुरु' की सफलता का कारण इसलिये समझ में आता है कि बहुत से बिगड़े हुए ताल्लुकेदार तथा जमींदार आदि थे जिनके जीवन से मदनमोहन सेठ का जीवन मिलता था।

ठाकुर जगमोहनसिंह

लाला श्रीनिवासदास के ही समय के एक अन्य लेखक थे ठाकुर जगमोहनसिंह। इन्होंने 'श्यामा स्वप्न' नाम से एक पुस्तक लिखी जिसे कहां तक उपन्यास कहा जा सकता है, इसमें बहुत संदेह है। यद्यपि यह गद्य में लिखा हुआ है, पर इसमें पद्य आते हैं, और यह केवल पुराने ढंग की प्रेम कहानी मात्र है। श्यामा और श्यामसुन्दर जिनकी कहानी का इसमें वर्णन है, वे इस लोक के रहने वाले ज्ञात नहीं होते। फिर भी उस युग में लोगों ने उनकी पुस्तक को पढ़ा, और उसकी कदर हुई।

भारतेन्दु

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र हिन्दी के धुरंधर लेखकों में हुए हैं। उन्होंने हिन्दी को सब तरह से संपन्न करने की चेष्टा की। वे 'कवि वचन सुधा' नामक एक पत्रिका का संपादन करते थे। इसमें इनकी रचनायें प्रकाशित हुआ करती थीं। उपन्यास साहित्य के क्षेत्र में उनका मान केवल इतना ही है कि उन्होंने 'कुछ आपबीती कुछ जगबीती' नाम से एक कहानी प्रकाशित करनी शुरू की, पर यह अंत तक अधूरी ही रह गई। यद्यपि वे स्वयं नाटक और कविता में ही उलझे रहे, पर उनसे अनुप्रेरणा लेकर कुछ उपन्यासों की रचना हुई।

बालकृष्ण भट्ट

पंडित बालकृष्ण भट्ट (१८४४—१९१४) ने दो उपन्यास लिखे जो उस युग में बहुत प्रसिद्ध हुए। उनका नाम था 'नूतन ब्रह्मचारी' और 'सौ अजान एक सुजान'। इन उपन्यासों में भी वही त्रुटि है, जो श्रीनिवासदास के उपन्यासों के सम्बंध में

बताई गई है, याने कथानक कम है और उपदेश अधिक। जो कुछ थोड़ा बहुत रोचकता है वह उपदेशों के पहाड़ के नीचे दब-सी गई है। आजकल के उपन्यास के पाठक इसके दस पृष्ठ भी पढ़ना पसन्द न करेंगे। 'सौ अजान एक सुजान' का कथानक भी बहुत कुछ 'परीक्षा-गुरु' से मिलता है। इसमें एक सेठ हीराचंद के दो पुत्र दो-चार अजान मुसाहबों के चक्कर में पड़ जाते हैं, उनका सब धन नष्ट हो जाता है। अब एक सुजान मित्र ने आकर उनका उद्धार किया।

भट्टजी के अनुसार उपन्यास का लक्ष्य

भट्टजी उपन्यास के लक्ष्य के सम्बन्ध में कैसे विचार रखते थे, यह उन्होंने अपने उपन्यास के अंत में जो शब्द लिखे हैं उनसे स्पष्ट हो जाता है। वे लिखते हैं —

"अंत में हम अपने पढ़ने वालों को सूचित करते हैं कि यदि आप लोगों में कोई अबोध और अजान हों, तो हमारे इस उपन्यास को पढ़कर आशा करते हैं सुजान बनें। इस किस्से के अजानों को सुजान करने को चंद्र था, और आप लोगों को हमारा यह उपन्यास होगा।"

भट्टजी की आलोचना

इस पर समालोचकों ने उनका मज़ाक उड़ाया है। श्री शिवनारायण श्रीवास्तव तैश में आकर लिखते हैं—"पर भट्टजी महाराज को यह समझना चाहिये था कि सुजान बनने के लिये उपन्यास नहीं पढ़ा जाता। उसके लिये और साधन हैं।"

मैं समझता हूँ कि भट्टजी की यह आलोचना उचित नहीं है, क्योंकि जो लोग प्रेमचंद तथा आधुनिक अधिकांश बड़े लेखकों की तरह यह समझते हैं कि उपन्यास किसी न किसी विचार-

धारा का वाहन तथा उद्घोषक हैं, वे सब भट्टजी की ही श्रेणी में आते हैं। यह सही है कि भट्टजी ने जिस भाषा में अपने उद्देश्य के स्पष्टीकरण का प्रयास किया है, वह आजकल के लोगों के लिये हास्योत्पादक है, पर आलोचक को ऊपरी बातों को लेकर ही वह नहीं जाना चाहिये, बल्कि गहराई में जाना चाहिये। 'नूतन ब्रह्मचारी' तथा 'सौ अजान एक सुजान' को उपन्यास साहित्य में उच्च स्थान इस कारण प्राप्त नहीं है कि ये उपन्यास ही नहीं हो पाये, न कि इसलिए कि भट्टजी ने उनके जरिये से एक विचार पेश करने की चेष्टा की थी।

अंबिकादत्त व्यास

श्री अंबिकादत्त व्यास ने भी इस युग में 'आश्चर्य वृत्तांत' नाम से कुछ स्फुट कथायें लिखीं। यह अद्भुत तथा अलौकिक कथाओं से भरा हुआ है। उन्होंने जो कुछ लिखा उसमें उस जमाने के पाठकों के मनोरंजन की सामग्री बहुत अधिक थी। उन्होंने अपने सामने यही लक्ष्य रखा था 'कि ऐसे किस्से सुनाऊँ कि सुनने वाले भी दंग रह जायं।' इस लक्ष्य में सफल होने पर भी उन्हें नाममात्र के लिए ही उपन्यासकारों की श्रेणी में रखा जा सकता है।

राधाकृष्ण दास

राधाकृष्ण दास ने 'निःसहाय हिन्दू' नामक एक उपन्यास लिखा। इस उपन्यास के नाम ही से विषय का कुछ आभास मिल जाता है। इस उपन्यास की सामाजिक पट-भूमि काल्पनिक होते हुए भी कुछ हद तक उस युग को प्रतिफलित करती है। वे भी सेठों के बिगड़े हुए लड़कों से कहानी का प्रारम्भ करते हैं। इसमें हिन्दू और मुसलमानों की लड़ाई भी दिखलाई गई है, पर

यह बहुत ही आश्चर्यजनक रूप से खुशी की बात है कि इसमें जहाँ एक तरफ बुरे मुसलमान दिखलाये गए हैं, वहाँ कुछ अच्छे मुसलमान भी दिखाये गए हैं। इनके कथानक में समसामयिक उपन्यासकारों से कहीं अधिक वास्तविकता है, और जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है ये व्यक्तिगत जीवन के छोटे दायरे से निकलकर सामाजिक समस्याओं के एक पहलू पर रोशनी डालने की चेष्टा करते हैं। इसमें संदेह नहीं कि उनमें उपन्यास लिखने की कुछ प्रतिभा थी, पर यह आश्चर्य है कि उन्होंने अधिक क्यों नहीं लिखा। तब शायद उनकी प्रतिभा ठीक से निखर पाती।

राधाचरण गोस्वामी

राधाचरण गोस्वामी (१८५८-१९२५) अच्छे नाटककार थे, पर उन्होंने कुछ उपन्यासों का अनुवाद किया और कुछ मौलिक भी लिखा। उनके उपन्यासों में 'विरजा' सबसे प्रसिद्ध है। वे स्वयं गोस्वामी थे, पर उन्होंने धर्म के नाम पर ढोंग करने वालों की अच्छी खिल्ली उड़ाई है। उनके अनुवाद बहुत सुन्दर हुए, पर विरजा को पढ़कर कोई यह कह सकता था कि अब हिंदी उपन्यास आगे बढ़ रहा है।

किशोरीलाल गोस्वामी

किशोरीलाल गोस्वामी का नाम हिंदी उपन्यास साहित्य में काफी महत्वपूर्ण है। इन्होंने सामाजिक, ऐतिहासिक तथा प्रेम मूलक कथाओं की रचना की। यह कहा गया है कि यदि हिंदी उपन्यास के क्षेत्र में किसीको सही रूप में प्रेमचंद की पीढ़ी का पूर्ववर्ती व्यक्ति कहा जा सकता है तो वह किशोरीलाल ही हैं। यह कथन बहुत हद तक कष्ट कल्पना ही है। किशोरीलाल ने अपने प्रथम उपन्यास 'कुसुम कुमारी' में रीतिकाव्यों का अनुसरण कर निरी प्रेम कहानी ही लिखी है। 'तारा', 'अंगूठी का नगीना' आदि

उपन्यासों में भी उन्होंने संस्कृत तथा हिंदी के प्राचीन कवियों के नमूने पर अभिसार, मान आदि का क्रम रखा है। इस प्रकार वे संस्कृत तथा हिंदी के प्राचीन साहित्य से भी अनुप्रेरणा लेते रहे हैं, पर भाषा, शैली आदि की दृष्टि से उन्होंने कुछ-कुछ आधुनिक अंग्रेजी साहित्य में प्रचलित शैलियों को अपनाने की चेष्टा की।

वे हिंदी के प्रथम कहानीकार

वे हिंदी के प्रथम कहानी लेखक भी माने जाते हैं। यद्यपि जैसा कि हम बता चुके उनके पहले भी फुटकर कहानी लिखने वाले मौजूद थे, पर उन्हें आधुनिक कहानी कला से विशेष सरोकार न था। वे पुराने उपाख्यानों के ढंग पर ही लिखते थे। सन् १६०० में किशोरीलाल की प्रथम कहानी 'इंदुमती' सरस्वती में प्रकाशित हुई थी। इस कहानी पर शेक्सपियर की 'टेम्पेस्ट' की स्पष्ट छाया है।

उन्होंने साठ के करीब उपन्यास लिखे। प्रेमचंद के पहले हिंदी जगत पर या तो किशोरी लाल गोस्वामी छाये हुए थे या देवकीनंदन खत्री। इसमें कोई संदेह नहीं कि प्रेमचंद के पहले हिंदी उपन्यासकारों में वे ही सबसे प्रमुख और कला की दृष्टि से अपेक्षाकृत उच्च कोटि के लेखक थे।

देवकीनंदन खत्री

देवकीनंदन खत्री के 'चंद्रकांता' तथा 'चंद्रकांता सन्तति' का आज से २५ साल पहले तक हिंदी जगत पर बहुत अधिक रोब छाया हुआ था। आज भी इनके पाठकों की संख्या कुछ कम नहीं है। इनकी इतनी ख्याति हुई कि बहुत से ऐसे लोगों ने जिन्होंने उर्दू की शिक्षा प्राप्त की थी, केवल इसलिये हिंदी सीखी कि इन पुस्तकों को पढ़ सकें। कथित मामूली तबके के बहुत से लोगों ने अपनी भुलाई हुई हिंदी को फिर से सीखा।

उनकी रचना में आकर्षण क्यों ?

आखिर इन रचनाओं में ऐसी क्या बात थी कि लोग उनकी तरफ इतने आकृष्ट हुए ? इनके किसी प्रकार भी मनोरंजन के अतिरिक्त और कोई लक्ष्य ज्ञात नहीं होता । चमत्कारिक घटनाओं की सर्वत्र भरमार है। लेखक ने मालूम होता है 'अलिफ़लैला' को अपना आदर्श रखा, और जैसा कि प्रेमचंद ने अपने खोजपूर्ण लेख में दिखलाया था, देवकीनंदन खत्री ने 'तिल्लस्मी होशरुबा' नामक एक फारसी पुस्तक को सामने रख कर ही अपनी कृतियां तैयार की थीं।

ऊलजलूल कल्पना

उनकी रचनाओं में कल्पना बिलकुल बेलगाम है। हवा में उड़ना, गायब हो जाना, मुर्दा से जिंदा हो जाना आदि कितनी ही ऐसी बातें हैं, जिन्हें कोई भी आधुनिक पाठक बर्दाश्त न करेगा। उनकी इन अद्भुत कहानियों का इतना प्रचार क्यों हुआ, जब हम इस बात पर सोचते हैं, तो एक बात जो सबसे पहले हमारे सामने आती है, वह यह है कि उनकी भाषा बहुत ही मुहावरेदार और सुन्दर होती थी। उस समय तक ऐसी भाषा कम पाई जाती थी। देवकीनंदन खत्री ने यों कहिये कि हिंदी गद्य की संभावनाओं को सामने लाकर रख दिया। यों उपन्यास की दृष्टि से अब हम उनकी रचनाओं को ऐतिहासिक के अतिरिक्त कोई महत्व देने के लिये तैयार नही हैं, पर यह मानना पड़ेगा कि देवकीनंदन ने अपनी अद्भुत कथाओं ही से सही हिंदी के क्षेत्र को ऐसा तैयार कर दिया कि उसमें प्रेमचंद ऐसे लेखक के आने पर कद्र हो सके।

देवकीनंदन के गुण

देवकीनंदन खत्री ने केवल फारसी शैली के तिलस्मी और

यों तो अब हम सीधे-सीधे प्रेमचंद के युग में आ गये. पर चलते हुए इस बीच के कुछ अन्य उपन्यासकारों का भी उल्लेख कर देना आवश्यक है।

अयोध्यासिंह उपाध्याय के उपन्यास

श्री अयोध्यासिंह उपाध्याय ने 'ठेठ हिंदी का ठाठ' तथा 'अधखिला फूल' नामक दो उपन्यास लिखे। ये उपन्यास अजीब ढंग से लिखे गये थे। लेखक का लक्ष्य उपन्यास लिखना नहीं था, बल्कि भाषा का नमूना दिखाना था। सिविल सर्विस के कोर्स के लिए पुस्तक की आवश्यकता थी, इसीलिये सुप्रसिद्ध भाषातत्वज्ञ डाक्टर ग्रियर्सन के अनुरोध पर 'ठेठ हिंदी का ठाठ' लिखा गया। 'अधखिला फूल' भी इसी पुस्तक की शैली पर लिखा गया। हिंदी में ये पुस्तकें यदि ३० या ४० साल पहले लिखी जातीं, तो उनकी अच्छी कद्र होती, पर जिस समय ये पुस्तकें हिंदी जगत में आईं, उस समय अन्य अच्छी कृतियों का सूत्रपात हो रहा था। इन दो रचनाओं को उपन्यास की दृष्टि से कहीं अधिक महत्व भाषा की दृष्टि से इस कारण प्राप्त है कि इनमें हिंदी-उर्दू झगड़े को निपटाने का प्रयत्न किया गया है।

यद्यपि ये पुस्तकें कथा साहित्य की दृष्टि से सफल नहीं कही जा सकतीं, पर आगे के लेखकों के लिए भाषा तथा शैली व सृष्टि में इनका दान स्वीकार करना पड़ेगा।

महावीरप्रसाद द्विवेदी

श्रीमहावीर प्रसाद द्विवेदी (१८७०-३७) हिंदी के उन सर्वमा मार्गदर्शक लेखकों में हैं, जिन्होंने हिंदी भाषा के विकास कम-से-कम इस युग के लिये वह Finishing touch याने अं। स्पर्श दिया, जिसके बगैर हिंदी आधुनिक विचारों का सु वाहन नहीं हो सकता था। इन्हीं के नेतृत्व में अब फजूल

होने वाले उस झगड़े का अंतिम निपटारा हुआ, जिसे व्रजभाषा और खड़ी बोली का विवाद कहते हैं। यदि व्रजभाषा की विजय होती, तो इसमें संदेह नहीं कि हिंदी अधिक से अधिक एक छोटे से भूभाग की भाषा बनकर रह जाती। पर खड़ी बोली की विजय ने हिंदी के लिए न केवल विस्तार में बल्कि गहराई में भी बहुत बड़ा जगत खोल दिया। खड़ी बोली के बगैर आधुनिक उपन्यासों की बात ही अकल्पनीय है। इसका यह अर्थ नहीं कि व्रजभाषा या अन्य स्थानीय भाषाओं में उपन्यास बन नहीं सकते थे, हमारे कहने का मतलब केवल इतना ही है कि वह भाषा इतने विस्तृत भूभाग की भाषा नहीं हो सकती थी, जितने की इस समय हिंदी है।

'सरस्वती' द्वारा आधुनिक ढंग की कहानियों को प्रोत्साहन

श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी ने सरस्वती के जरिये से आधुनिक ढंग पर लिखित कहानियों को प्रोत्साहन दिया। बंगला से बहुत सी कहानियों का अनुवाद लेकर सरस्वती में प्रकाशित हुआ। नये लेखकों ने इनसे अनुप्रेरणा ली। उपन्यास साहित्य में द्विवेदीजी का कोई सीधा दान न होने पर भी उन्होंने परोक्ष रूप से उपन्यास साहित्य के लिये जमीन तैयार की।

महावीर प्रसाद की शैली

उनकी शैली केसंबंध में यहकहा गया है कि 'यदि महावीर प्रसाद द्विवेदी को कोई बहुत ही कवित्वपूर्ण और गम्भीर बात भी कहनी पड़ती, तो वे उसमें इस प्रकार का घरेलू वातावरण उपस्थित कर देते, इस प्रकार की ध्वनि और संकेत लाते, बात को इस प्रकार घुमा-फिराकर कहते कि पाठक उसे बड़ी सरलता से समझ जाते, और उसका पूरा आनंद उठा पाते थे।'

उपन्यास के लिये यह शैली उपयुक्त

कहना न होगा कि यह शैली उपन्यास के लिये बहुत ठीक पड़ती थी। यद्यपि देवकीनन्दन खत्री ने चुस्त और मुहावरेदार भाषा लिखने की परिपाटी में बहुत सफलता प्राप्त की थी, पर उन्होंने जिस विषय को अपनाया था, उसके कारण स्वाभाविक रूप से उनकी भाषा में वह बात नहीं आ सकती थी, जो विचारों के गाम्भीर्य से आ सकती थी, भले ही वे विचार पृष्ठभूमि में रहें और सामने न आवें।

विशेष तरह की प्रतिभा

श्री महावीर प्रसाद द्विवेदी प्राच्य और पाश्चात्य दोनों साहित्य के केवल ज्ञाता ही नहीं, उसमें निष्णात थे। उनमें संकलन, संपादन तथा छायानुवाद की अद्भुत प्रतिभा थी। उन्होंने जिन विषयों को करीब-करीब सोलह आना दूसरों से लिया था, उनमें भी लिखते समय एक ऐसा निजत्व ला दिया कि वह संपूर्ण रूप से उनका ही ज्ञात होता था। दूर की कौड़ी लाने में वे एक ही थे। जो कुछ भी लिखते उसमें एक मर्यादा तथा वजन आ जाता था।

इस युग के नवीन तथा भावी लेखकों ने उनके लेखों तथा पुस्तकों को पढ़ा, और उन्होंने उनकी शैली का अनुकरण किया क्या निबंध लेखक, क्या आलोचक और क्या कथा साहित्यकार सबने उनका अनुकरण किया। पहले ही बताया जा चुका है कि उपन्यास में भाषा और शैली का बहुत उच्च स्थान है। द्विवेदीजी ने इनके विकास में बड़ी मदद दी।

प्रेमचंद पर अन्य प्रभाव

अनुवादित उपन्यास

उपन्यास साहित्य की दृष्टि से हिन्दी अन्य समृद्ध भारतीय भाषाओं विशेषकर बंगला के पीछे रही। इसका कारण यह है कि अंग्रेजी शिक्षा हिन्दी प्रांतों में देर में फैली। स्वाभाविक रूप से हिंदी के लेखक अपनी पड़ोसी भाषाओं की ओर झुके और उन्होंने बहुत सी पुस्तकों का अनुवाद हिंदी में कर डाला। लोगों में उपन्यास पढ़ने के लिये चाव था इस कारण विशेषकर उपन्यासों का अनुवाद हुआ। स्वयं भारतेन्दु ने अनुवादों का सिलसिला जारी किया, और उनकी 'कविवचन सुधा' ने अनुवादकों को प्रोत्साहित किया।

कई अनुवादक

बंगला में बंकिमचंद्र, रमेशचंद्र आदि के उपन्यास प्रसिद्ध हो रहे थे। बाबू गदाधरसिंह ने बंकिमचंद्र की 'दुर्गेशनंदिनी' तथा रमेशचंद्र दत्त के 'वन विजेता' का अनुवाद हिंदी में किया। भारतेन्दु की अनुप्रेरणा से उनके फुफेरे भाई श्री राधाकृष्णदास ने उस समय का प्रसिद्ध बंगला उपन्यास 'स्वर्ण लता' का अनुवाद हिंदी में किया। पंडित प्रतापनारायण मिश्र ने बंकिमचंद्र के अन्य कई उपन्यासों का अनुवाद किया। ये अनुवाद बहुत सफल रहे।

बंगला से ही अधिक अनुवाद

उर्दू और अंग्रेजी से भी अनुवादों की भरमार हो गई, पर बंगला से जितनी पुस्तकों के अनुवाद हुए, उतनों का किसी और भाषा से अनुवाद नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि एक तो बंगला से अनुवाद करना बहुत आसान पड़ता था, और दूसरा बंगला में लिखे हुए उपन्यासों में भावुकता का गुण अधिक होने के कारण हिंदी के पाठकों को बहुत पसंद आये क्योंकि यह एक नई बात थी। पहले के उपाख्यानों तथा दास्तानों में अलौकिक तथा असंभव बातों का ही जोर रहता था, वह एक और ही दुनिया थी। लोग उन कहानियों को पढ़ते थे और समझते थे कि उनसे उनके जीवन का कोई संबंध नहीं है। पर बंगला के उपन्यासों में काल्पनिकता होने पर भी वह बहुत कुछ संभव की श्रेणी में आ चुकी थी। फिर बंकिमचंद्र, रमेशचंद्र आदि के उपन्यासों में देश-भक्ति आदि उदात्त भावनाओं का पुट था। इससे ऐसे उपन्यास बहुत प्रिय हुए।

हिन्दी, उर्दू

उस युग में जैसे हिंदी के अन्दर ब्रजभाषा और खड़ी बोलीका झगड़ा चल रहा था, वैसे ही हिंदी प्रांतों में हिंदी और उर्दू का भी झगड़ा चल रहा था। स्मरण रहे कि बाद को हिंदी-उर्दू झगड़े ने जिस प्रकार धार्मिक रंग प्राप्त कर लिया, उस जमाने में यह रंग अपरिचित था। खुद हिंदुओं में ही उर्दू के समर्थक थे, और उनकी संख्या तथा महत्व के मुकाबले में हिंदी के समर्थक कमजोर पड़ते थे।

उर्दू का पल्ला तगड़ा

बात यह है कि मुस्लिम राजाओं के शासनकाल में फारसी और अरबी का प्रचलन अधिक था। फारसी ही सरकारी भा

के रूप में चलती थी। जब से अंग्रेज आये, तब से अंग्रेजी के साथ-साथ उर्दू चलने लगी थी। ये ही भाषायें राजभाषायें थीं। स्वाभाविक रूप से उर्दू का पल्ला बहुत तगड़ा पड़ता था। हिंदू मुसलमान सभी उर्दू पढ़ते थे। इसी कारण हिंदी का पक्ष दुर्बल था।

उर्दू से अनुवाद कम

उर्दू में बहुत से हिन्दू भी लिखते थे। रतनलाल सरशार (जन्म १८४६) उर्दू के बहुत बड़े लेखक थे। उन्होंने उर्दू उपन्यास में एक आदर्श उपस्थित किया। उन्होंने जो 'फिसाने आजाद' लिखा उसी को संक्षिप्त रूप में प्रेमचंद ने आजाद कथा के नाम से अनुवाद किया। सरशार भाषा के जादूगर थे इसमें संदेह नहीं। उर्दू से हिंदी वालों के लिये अधिक अनुवाद इसलिये नहीं हुआ कि एक तो जहाँ तक उपन्यास साहित्य का संबंध है उर्दू हिंदी से कभी भी आगे नहीं रही, इसके अतिरिक्त हिंदी के संभव पाठकों में बहुत अधिक संख्या ऐसे लोगों की थी जो सीधे-सीधे उर्दू में उपन्यासों को पढ़ कर रस ले सकते थे।

पर प्रभाव अधिक

इसी कारण उर्दू से हिंदी में कम अनुवाद होने से यह कहना संभव नहीं है कि उर्दू का प्रभाव हिंदी पर कम रहा। उर्दू में जो कुछ भी रहा, उसको हिंदी वाले काम में लगाते थे। उर्दू की चुस्त और चलता शैली हिंदीवालों को बहुत पसंद थी। प्रेमचंद के संबंध में तो यह बहुत निश्चयता के साथ कहा जा सकता है कि उन्होंने उर्दू से बहुत कुछ लिया। कुछ लोगों का तो यहाँ तक कहना है कि उनकी टकसाली भाषा

उर्दू की देन है। यह भी कोई कम महत्व की बात नहीं है कि प्रेमचंद ने पहले पहल उर्दू में ही लिखना शुरू किया।

प्रेमचंद और उर्दू रचना

प्रेमचंद ने अपने लेखक जीवन का सूत्रपात्र उर्दू में किया, इससे उस ज़माने में उर्दू का महत्व अवश्य स्पष्ट हो जाता है। इसे मानने में किसी को कोई हिचकिचाहट नहीं होना चाहिए। जैसा कि मैं बता चुका, उर्दू का यह प्रसार ऐतिहासिक कारणों स था। पर जैसे यह तथ्य उर्दू के उस समय का महत्व प्रदर्शित करता है, उसी प्रकार प्रेमचंद का बाद को उर्दू से हिंदी में चला जाना भी कुछ सूचित करता है। वह यह कि उर्दू का महत्व घट गया, इसी कारण वाहन के रूप में प्रेमचंद ने उसे अपनाया।

प्रेमचंद ने सब से सीखा

इस प्रकार थोड़े में परिस्थिति यह है कि प्रेमचंद ने उर्दू, बंगला तथा अंग्रेजी सभी भाषाओं से संग्रहण किया। सुलेखक का मन बहुत शीघ्र दूसरों की खूबियों को ग्रहण करने में समर्थ होता है। वह जहाँ जो भी चीज़ अच्छी देखता है, वहाँ से वह उस बात को ग्रहण करता है। प्रेमचंद ने ऐसा ही किया। उन्होंने खुद माना है कि रवीन्द्रनाथ की कहानियों से उन्होंने कहानी लिखने की कला को ग्रहण किया। पर उन्होंने और भी बहुत से लोगों से सीखा।

प्रेमचंद कृत अनुवाद साहित्य

आपने देश की भाषाओं के अतिरिक्त उन्होंने फारसी तथा यूरोपीय साहित्य का बहुत अच्छा अध्ययन किया था। उन्होंने शेखसादी पर हिंदी में एक पुस्तक लिखी। उन्होंने गैल्सवर्दी

की एक पुस्तक तथा अनातोल फ्रांस की एक पुस्तक का हिंदी में अनुवाद किया। इन बातों को जानना इसलिये जरूरी है कि वे कला के क्षेत्र में बहुत दूर की कौड़ी लाया करते थे।

सबसे लेने पर भी सबसे मौलिक

उन्होंने सबसे लिया, पर किसी से भी नहीं लिया, क्योंकि उन्होंने यदि कुछ लिया तो शैली तथा तरीका ही लिया। जैसे शेक्सपियर सबसे सब कुछ लेकर भी शेक्सपियर रहे, उसी प्रकार प्रेमचंद उर्दू, हिंदी, बंगला, फारसी, अंग्रेजी सबसे ग्रहण योग्य बातों को लेते रहने पर भी वे अपने पहले के तथा सम-सामयिक सब हिंदी लेखकों में से सबसे अधिक मौलिक रहे।

प्रेमचंद की शैली की प्रगतिशीलता

उन्होंने अपनी प्रारम्भिक रचनाओं में रतनलाल शरसार का कुछ अनुकरण किया, पर बाद को उनकी एक निजी शैली हो गई। ज्यों-ज्यों वे लिखते गये त्यों-त्यों उनकी शैली निखरती गई, और 'गोदान' में पहुँच कर उन्होंने करीब-करीब अपनी शैली में भी क्रांति कर दी, और एक नई शैली उत्पन्न की।

अपने इर्दगिर्द के समाज से सबसे अधिक लिया

उन्होंने दूसरों से लिया पर सबसे अधिक उन्होंने अपने इर्दगिर्द वालों के समाज से लिया। वे कल्पना पर निर्भर न रहकर अपने इर्दगिर्द के जीवन से अपने उपन्यासों के लिये मसाला लेते थे।

जीवन से उपन्यास का मसाला

उन्होंने स्वयं इस संबंध में लिखा भी है—

"उपन्यासों के लिये पुस्तकों से मसाला न लेकर जीवन ही से मसाला लेना चाहिये।"

(कुछ विचार)

वे इस संबंध में जो कुछ सोचते थे वह बड़े महत्व का है क्योंकि इससे उनकी कला को समझने में सहायता प्राप्त होती है।

उपन्यास का मसाला कहां से ?

वे वाल्टर बेसेंट के इस कथन को उल्लिखित लेख में उद्धृत करते हैं। वाल्टर बेसेंट का कहना था—

"उपन्यासकार को अपनी सामग्री आले पर रखी हुई पुस्तकों से नहीं, उन मनुष्यों के जीवन से लेनी चाहिए जो उसे नित्य ही चारों तरफ मिलते रहते हैं। मुझे पूरा विश्वास है कि अधिकांश लोग अपनी आंखों से काम नहीं लेते। कुछ लोगों को यह शंका भी होती है कि मनुष्यों में जितने अच्छे नमूने थे वे तो पूर्वकालीन लेखकों ने लिख डाले, अब हमारे लिए क्या बाकी रहा ? यह सत्य है, लेकिन अगर पहले किसी ने वृद्ध, कंजूस उड़ाऊ युवक, जुआरी, शराबी, रंगीन युवक आदि का चित्रण किया है, तो क्या अब उस वर्ग के लोग नहीं मिल सकते। पुस्तकों में नये चरित्र न मिलें पर जीवन में नवीनता का अभाव कभी नहीं रहा।"

तुच्छ घटना से अनुप्रेरणा

कैसे प्रेमचंद इर्दगिर्द की घटनाओं से अपनी पुस्तकों के लिये कथानक का संग्रह कर लेते थे, इसका भी वर्णन उन्हीं के मुँह से सुना जा सकता है। वे लिखते हैं—

"बहुधा एक तुच्छ-सी घटना उनके मस्तिष्क पर प्रेरणा का काम कर जाती है। किसी का नाम सुनकर, कोई स्वप्न देख कर, कोई चित्र देख कर उनकी कल्पना जाग उठती है।"

उनका कोई मुकाबला नहीं

इस प्रकार प्रेमचंद में वह बात थी, जो उनके पहले के हिंदी लेखकों में नहीं थी। यदि थी भी तो बहुत कम मात्रा में थी, और वह उनकी ऊलजलूल उड़ानों के नीचे दब जाती थी। प्रेमचंद अपने युग के जीवन के उपन्यासकार थे। इस दृष्टि से देखने पर १९२० से लेकर १९३७ तक कोई भी हिंदी लेखक उनके मुकाबले में ठहर नहीं सकता, केवल यही नहीं सारे भारतीय साहित्य में उनके उपन्यासों की तरह उस समय तक निम्न श्रेणी के जीवन को इतना सर्वांगपूर्ण तरीके से किसीने चित्रित नहीं किया।

प्रेमचंद का जीवन तथा विकास

उनके माता-पिता

प्रेमचंद का जन्म बनारस से चार मील की दूरी पर स्थित लमही नमक गांव में ३१ जुलाई सन् १८८० के दिन एक निम्न-मध्यवित्त परिवार में हुआ था। उनके पिता श्री अजायबराय डाकखाने में कर्मचारी थे। उनकी माता का नाम आनन्दी देवी था। आनंदी देवी का स्वास्थ्य हमेशा खराब रहा करता था। प्रेमचंद से तीन बड़ी बहिनें थीं। उनमें दो की मृत्यु हो गई, पर तीसरी बहिन काफी समय तक जीवित रहीं।

उर्दू पढ़ने भेजे गये

प्रेमचन्द का असली नाम धनपतराय था। उनके चाचा उन्हें नवाबराय कहा करते थे। इस प्रकार बाल्यावस्था से ही प्रेमचंद के दो नाम पड़ गये। जब प्रेमचन्द की अवस्था पांच वर्ष की हुई, तो उनकी पढ़ाई-लिखाई आरंभ हुई। उस समय कायस्थों में प्रचलित प्रथा के अनुसार, उन्हें उर्दू पढ़ने मौलवी साहब के पास भेजा गया। वे अन्य उर्दू पढ़ने वाले बालकों के साथ पढ़ने मौलवी साहब के घर पर जाते थे।

नटखट स्वभाव

बाल्यावस्था में वे शारीरिक रूप से तो कमजोर थे, परन्तु पढ़ने-लिखने में वे बहुत तेज थे। हास-विनोद से भी उन्हें बहुत प्रेम था, और वे बालकों के साथ विनोद-पूर्ण खेलों में खूब भाग

लिया करते थे। कभी कभी वे शरारत भी करते थे, और उसके फलस्वरूप कभी-कभी दो चार चपतें भी उन्हें पुरस्कार में मिल जाती थीं।

संयुक्त परिवार

प्रेमचंद का परिवार एक संयुक्त परिवार था। अपने चचेरे भाइयों को मिलाकर प्रेमचंद पांच भाई थे। इस निम्नमध्यवित्त संयुक्त परिवार की किसी प्रकार गरीबी में गुजर चलती थी। पर परिवार के सब भाइयों में परस्पर प्रेम था, और किसी बात का भेदभाव नहीं था।

रुपया चुराना

एक बार की बात है कि प्रेमचंद के चाचा ने सन बेचा, और उसके रुपयों को घर में ताक पर रख दिया। प्रेमचंद को यह बात मालूम हुई, और उन्होंने अपने चचेरे भाई के साथ मिल कर एक रुपया चुराया। उस रुपये का उपयोग करना तो उन्हें आता नहीं था। अतएव चचेरे भाई ने उसे भुनाकर बारह आने मौलवी साहब को जाकर फीस में दे दिये, और चार आने के अमरूद और रेवड़ियां आदि दोनों ने मिलकर खा लीं। चाचा को जब यह पता लगा तो वे उनके पास पहुंचे। उनके पूछने पर दोनों ने अपनी शरारत को कबूल कर लिया। चाचा ने क्रोध में आकर अपने लड़के को पीटना शुरू किया, और उसे पीटते हुए घर लाये। उस समय प्रेमचंद की आकृति बड़ी दयनीय थी। आनन्दी देवी ने जब एक लड़के को पिटता देखा वे तो प्रेमचंद को भी पीटने लगीं। पर उनकी चाची ने आकर प्रेमचंद को इस पिटाई से बचा लिया।

मातृवियोग

जब प्रेमचंद आठ वर्ष के हुए, तब आनन्दी देवी बीमार

पड़ गईं । वे छै मास तक रोग-शैया पर पड़ी रहीं। प्रेमचंद ने इस अवसर पर अपनी रुग्णा मां की सेवा की । वे उनके सिरहाने बैठकर पंखा झला करते थे। उनके चचेरे भाई उनके लिये औषधि आदि की व्यवस्था में लगे रहते थे। मां के पास एकान्त रहता था। उनकी बहिन का विवाह तथा गौना हो चुका था। वे मां की मृत्यु के लगभग एक-डेढ़ सप्ताह पूर्व वहां आईं। मां की मृत्यु के अवसर का वर्णन स्वयं प्रेमचंद के शब्दों में इस प्रकार है—"जब मेरी मां मरने लगीं तो मेरा, मेरी बहिन का तथा बड़े भाई का हाथ मेरे पिता के हाथ में देकर बोलीं—ये तीनों बच्चे तुम्हारे हैं।"

'बहन, पिता, भाई सब रो रहे थे । पर मैं कुछ भी नहीं समझ पा रहा था। मां के मरने के कुछ दिन बाद बहिन अपने घर चली गईं। दादी, भैया और पिताजी रह गये। दो-तीन महीने बाद दादी भी बीमार होकर लमही चली आईं। मैं और भैया रह गये । भैया दूध में शक्कर डालकर मुझे खूब खिलाते थे; पर मां का वह प्यार कहाँ ! मैं एकान्त में बैठकर खूब रोता था।

दादी से कहानियां सुनना

इस समय प्रेमचंद का काम उर्दू पढ़ना, गुल्ली-डंडा खेलना और ईख तोड़कर खाना तथा मटर चूसना था। रात में वे अपनी दादी के मुंह से बड़े प्रेम के साथ कहानियां सुना करते थे।

सौतेली मां का व्यवहार

तदुपरांत उनके पिता का तबादला जीमनपुर नामक स्थान का हो गया। वे अपने पिता और दादी के साथ वहां गये। उन के भाई इंदौर चले गये । कुछ दिनों के बाद अजायबराय की

दूसरी पत्नी आईं। वे अपने साथ नैहर से अपने भाई विजयबहादुर को भी लाईं। वे विजयबहादुर को अधिक मानतीं और उन्हें कम। वे प्रेमचंद के साथ खाने-पीने के विषय में भी ज्यादती करतीं। बेचारे प्रेमचंद उस समय बड़ी परेशानी में रहते थे।

परेशानियां वरदान

पर यही परेशानियां आगे चल कर उनके लेखक जीवन में वरदान बन गईं। इन्हीं परेशानियों की अनुभूति के ही कारण तो उनकी रचनायें मर्मस्पर्शी हो सकीं। लगभग एक वर्ष के बाद उनकी वृद्धा दादी का भी देहान्त हो गया।

गंदगी तथा गरीबी का वातावरण

उस समय प्रेमचंद करीब करीब बारह वर्ष के थे। उनके जीवन के क्षण अत्यन्त दरिद्रता की दशा में बीत रहे थे। उनके पिता डेढ़ रुपया किराया वाले एक गंदे मकान में रहते थे। उसी मकान के द्वार पर की कोठरी में प्रेमचंद सोया करते थे। अपने मनोरंजन के लिए वे पास में एक तमाखूवाले के यहां चले जाते और अपना मन बहलाते।

मिशन स्कूल में

जब प्रेमचन्द तेरह वर्ष के हुए, तब अजायबराय की बदली गोरखपुर को हो गई। प्रेमचन्द का जीवन उसी गति से बीत रहा था। अब उनका नाम मिशन हाई स्कूल की छठवीं कक्षा में लिखाया गया। यहां उनको पतंग उड़ाने का बहुत शौक था, पर पैसों के अभाव में वे लाचार थे। वे अपने समवयस्क मामा विजयबहादुर के साथ पतंग उड़ाने के मैदान में जाते, और वह पतंग उड़ाना तथा उनका लड़ाना देखते रहते। जब कोई कटी

हुई पतंग उनके हाथ लग जाती तो वे उसी से अपनी इच्छा की पूर्ति कर लेते ।

लिखने का प्रारंभ

प्रेमचन्द का मन घर में कम लगता था। भाग्य से यहां भी उन्हें जीमनपुर की तरह तमाखू की दूकान मिल गई, और उन का अधिकांश समय उसी दूकान पर कटता। यहीं से प्रेमचन्द का झुकाव लिखने की ओर हुआ। वे अपनी रचनाओं को लिखते, और उसके बाद उसे फाड़ देते। लिखने और फाड़ने का यही क्रम चला करता। कभी-कभी उनके पिताजी उनका यह क्रम देख लेते और पूछ भी लेते। प्रेमचन्द पिता के मुँह से कुछ लिखने की बात सुन कर शर्मा कर रह जाते। पर उन्होंने कभी भी प्रेमचन्द की रचनाओं को पढ़कर अपनी सम्मति अथवा प्रोत्साहन नहीं दिया। पर वे क्या जानते कि एक दिन उनका लड़का महान् लेखक होगा। वे बेचारे छोटी आकांक्षाओं के साधारण आदमी थे।

तिलस्म होशरूबा का पाठ

इन दिनों इस तमाखू वाले के लड़के से उनकी मित्रता इतनी अधिक बढ़ गई कि उन्हें जब भी समय मिलता, वे उसके पास पहुंचते थे। यह बात जरूर है कि वे वहां उसकी सोहबत में बैठकर तमाखू पिया करते थे, पर साथ ही वे दोनों मिलकर 'तिलस्म होशरूबा' पढ़ा करते थे। यह पुस्तक फारसी का एक प्रसिद्ध ग्रन्थ था। कहा जाता है अकबर के दरबार के अन्यतम प्रसिद्ध विद्वान फैजी ने इसकी रचना की थी। यह एक बहुत ही अजीब पुस्तक है। इसकी कहानी इतनी लंबी है कि अकेले 'एनसाइक्लोपीडिया ब्रियनिका' के बराबर है। इसमें तरह-तरह की तिलस्मी बातों का वर्णन था, और इसमें कोई आश्चर्य नहीं

कि छात्र प्रेमचन्द को यह पुस्तक बहुत पसंद आती थी।

इस पुस्तक के अनुकरण की इच्छा

एक साल तक इसी क्रम से 'तिलस्म होशरूबा' का पढ़ना जारी रहा, और साथ-ही-साथ उनमें यह इच्छा उत्पन्न होती रही कि वे भी ऐसा कुछ लिखें। यहीं पर छात्र प्रेमचन्द तथा अन्य साधारण छात्रों का फर्क मालूम होता है। उपन्यास, कहानी आदि तो सभी छात्र पढ़ते हैं, पर वे या तो समय बिताने के लिये या केवल मनोरंजन के लिये पढ़ते हैं। पर प्रेमचन्द ने इन कहानियों को पढ़ा, और झट उनमें यह इच्छा उत्पन्न हुई कि वे भी इसी प्रकार के लेखक बन जायं। केवल यही नहीं उन्होंने इसके लिये कष्ट सहन करना या साधना करना स्वीकार कर लिया।

साहित्यिक साधना

लिखना और फाड़ना, फिर लिखना और फिर फाड़ना हमारे सामने एक चित्र उपस्थित करता है, जिससे हम यह समझते हैं कि प्रेमचन्द को यह मंजूर नहीं था कि वे जैसे-तैसे घटिया दर्जे की चीज लिखकर लेखक कहलावें। उन्होंने जिन कहानियों को पढ़ा था, वे चाहते थे कि वे उनके आदर्श तक पहुंच जायँ। इसी कारण वे इसके लिये अन्य बातों को छोड़कर साधना करते थे। क्या पता कि 'तिलस्म होशरूबा' की चर्चा के लिये ही उन्होंने तमाखू पीने की लत को अपनाया हो। यह तो साफ है कि वहां उस मित्र के घर पर उनका मुख्य कार्य साहित्य का अनुशीलन ही होता था।

दिक्कत से फीस दे पाते

यह पहले ही बताया जा चुका है कि प्रेमचन्द बहुत गरीबी

में पले। उन्हें पैसों की दिक्कत हमेशा से ही थी। केवल बारह आने महीने में स्कूल की फीस लगती थी। इन बारह आनों से भी वे दो-एक आने खा जाते थे। फिर स्वभाव से दानी होने के कारण उनसे पड़ोस की कथित छोटी जाति के लोग भी कुछ मांग लेते थे। इस प्रकार फीस देने में बड़ी दिक्कत होती। चाची से मांग कर किसी प्रकार काम चलाते थे।

गरीबों से सहानुभूति

प्रेमचन्द के उपन्यासों तथा कहानियों में गरीबों के प्रति जो सहानुभूति सर्वत्र दिखाई पड़ती है, उसकी तह में उनकी अपनी गरीबी थी। उनके सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि वे मध्यवित्त श्रेणी के सबसे गरीब तबके में से थे। किसी भी मौके पर वे अपने उपन्यासों में गरीबों का मजाक नहीं उड़ाते। वे उनके दुःखों को भली भांति समझते थे, इसलिये यह कोई आश्चर्य की बात नहीं है कि आम जनता में उनकी रचनाओं की [illegible]नी कद्र हुई।

[illegible]ध, घी नहीं मिलता था

उनके बचपन की एक दर्द-भरी घटना यह है कि एक बार उनके पिता के एक मित्र उनसे मिलने आये। उन्होंने देखा कि वे बहुत दुबले हैं, इस पर उन्होंने यों ही कह दिया—तू दुबला क्यों हो गया? क्या तुझे दूध-घी नहीं मिलता।

सचमुच उन्हें दूध घी नहीं मिलता था। जिस जमाने का जिक्र है, उसमें आज के मुकाबले में दूध-घी बहुत सस्ता था, और खालिस घी तथा दूध मिलते भी थे पर गरीबों को फिर भी ये चीजें नहीं मिलती थीं। प्रेमचंद किसी तरह सूखी रोटी पर गुजारा करते थे। जब उन्होंने अपने पिता के मित्र को ऐसा

कहते सुना तो वे रो पड़े। पिता के मित्र ने उन्हें गले से लगा लिया। बाद को चाची ने उनको घी देना चाहा, पर उस देने में स्नेह का अभाव होने के कारण वे उसे लेने से झिझकते रहे।

आत्म-सम्मान की भावना

इस घटना से ज्ञात होता है कि प्रेमचंद में यह अनुभूति तो थी कि उन्हें ढंग का खाना-पीना नहीं मिल रहा है, पर साथ ही इतना आत्म सम्मान था कि वे जैसे-तैसे अच्छा खाना पसंद नहीं करते थे। बाद को इस गुण ने भी उनको बड़ा बनाने में सहायता दी। वे बाद के जीवन में चाहते तो खैरख्वाही से बहुत कुछ बनाते, पर उन्होंने सम्मान के जीवन को ही तरजीह दी।

पांच रुपये माहवार में सारा खर्च

पंद्रह साल की उम्र में वे नवी कक्षा में पढ़ते थे। वे पढ़ने के लिये बनारस भेजे गये। रवाना होते समय उनके पिता ने उन से पूछा कि माहवार कितना खर्च दिया जाया करे। प्रेमचंद सारी परिस्थिति को समझते थे। इसके अतिरिक्त वे पढ़ने के लिये जा रहे थे न कि ऐश करने के लिये। इसलिये उन्होंने कहा—मुझे पांच रुपया भेज दिया करें।

विद्यार्थी सुख को त्याग दे

अवश्य उन दिनों पांच रुपये का मूल्य आज से कहीं अधिक था, पर फिर भी अधिक-से-अधिक खर्च करने की प्रवृत्ति से वे किस प्रकार बचते थे इसका यह एक नमूना है। पहले के जमाने में यह जो धारणा थी कि विद्यार्थी सुख को त्याग दे, और सुखार्थी विद्या को त्याग दे वे इसके जीते-जागते नमूने थे।

प्राइवेट विद्यार्थी

यों तो वे घर से यह कहकर चले थे कि पांच रुपयों में ही

गुजारा हो जायगा, पर जब वे बनारस पहुंचे तो उन्होंने यह देखा कि केवल स्कूल की फीस में ही दो रुपये लग जायंगे। इस लिये उन्होंने अपना कार्यक्रम बदल दिया। उन्होंने प्राइवेट पढ़ने का विचार किया। वे दिनभर शहर में रहते और पढ़ते, रात को घर पहुँचते। एक कुप्पी के सामने रात को बैठकर टाट बिछाकर पढ़ा करते थे। इतनी बाधाओं के होते हुए भी पढ़ने की तीव्र इच्छा के कारण वे पढ़ते चले गये।

शादी के लिये पांच रुपयों के गुड़

इन्हीं दिनों उनके पिताजी ने उनकी शादी की बात सोची। इसके लिये तैयारी भी होने लगी। गरीब घर था इसलिए शादी के लिये एक तैयारी यह हुई कि पांच रुपये का गुड़ खरीदकर उनके पास रखा गया। यद्यपि यह उन्हींकी शादी के लिये खरीदा गया था तथा उनके पिताजी का यह हुक्म था कि इस गुड़ को कोई न खाय, पर भयंकर गरीबी के कारण गुड़ ही उनके लिये बड़ी भारी मिठाई थी।

संदूक की चाभी ग़ायब

इसलिये उन्होंने गुड़ खाना शुरू किया। कुछ मित्र भी एकत्र हो जाते थे और सब लोग मिलकर गुड़ पर जुटते थे। इस प्रकार गुड़ घटने लगा। तब उन्हें चिंता हुई, और उन्होंने गुड़ के संदूक की चाभी को दरवाजे के दराज में डाल दिया। ऐसा इसलिए किया कि गुड़ खाने की इच्छा होने पर भी जब चाभी नहीं मिलेगी तो गुड़ नहीं खाया जायगा।

फिर भी गुड़ खाया गया

पर जब मित्रमंडली एकत्रित हुई और उन लोगों ने कहा कि गुड़ खाया जाय, तो फिर चाभी को दरवाजे से निकाला गया।

फिर गुड़ खाया जाने लगा। इस प्रकार गुड़ आधा हो गया। जब उन्होंने यह हालत देखी तो वे डरे, और उन्होंने जाकर चाभी को कुएं में डाल दिया। जब बाद को गुड़ की जरूरत पड़ी तो ताला तोड़कर गुड़ निकाला गया।

धुन के पक्के

यह साफ मालूम हो गया कि गुड़ खाया गया है। इस पर उनकी चाची उन पर बहुत नाराज हुईं। इस घटना से यह पता लगता है कि जिन्होंने युग-युग के लिए अमर साहित्य की सृष्टि की, उन्होंने बचपन कितनी गरीबी में बिताया। इतनी प्रतिकूल अवस्था में पलकर भी वे बड़े हो सके, यह उनकी अद्भुत लगन के कारण है। कभी भी उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा और हमेशा अपने मार्ग पर अटल रूप से चलते रहे। कितनी ही तकलीफें उठाईं पर उन्होंने साहित्य का अनुशीलन नहीं छोड़ा।

शादी के लिए खुद बाँस काटे

उनकी गरीबी का एक और अत्यंत कष्टकर प्रमाण यह है कि उन्होंने अपनी शादी के लिए आप ही बाँस काटे। शादी का जो मंडप बना था उसे छाने के लिए जिन बाँसों की आवश्यकता थी उन्हें इस प्रकार प्राप्त किया गया।

अनमेल विवाह

उनका यह विवाह बस्ती जिले के मेंहदावल तहसील के रामापुर गाँव में हुआ था। जिनके साथ विवाह हुआ था, वे वहाँ के जमींदार की पुत्री थीं। यह विवाह बहुत अनमेल था और सफल नहीं हुआ। इस विवाह से कोई भी खुश नहीं हुआ।

पिता की मृत्यु पर सारा बोझ पड़ा

विवाह के बाद एक साल भी न गुजरा था कि उनके पिता

का देहांत हो गया। सारी गृहस्थी का भार इन पर आ पड़ा। वे इन दिनों काशी के क्वींस कालेजियट स्कूल में पढ़ते थे। [illegible] [illegible] थी कि फीस माफ थी। रोज देहात से आते जाते थे। सवेरे आठ बजे घर से निकलते और पढ़-पढ़ाकर, ट्यूशन कर रात को दस बजे घर लौटते थे। सब मिलाकर उन्हें रोज कम-से-कम पैदल तीन मील का चक्कर लगाना पड़ता था।

इंटर और बी. ए. में फेल

फिर भी पढ़ना न छूटता था। उधार पर सब काम चल रहा था। बड़े फाके में उन्होंने एक गरम कोट बनवाया था, उसे मजबूर होकर दो रुपयों में बेच देना पड़ा। फिर भी वे निराश नहीं हुए और पढ़ते गए। पर पढ़ने का समय नहीं मिलता था, इस कारण उनका गणित बहुत कमजोर था और वे कई बार इंटर में फेल हुए। बहुत बाद में चलकर उन्होंने इंटर और बी. ए. पास किया।

शिवरानी देवी से विवाह

जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है कि इनका प्रथम विवाह नितांत असफल रहा। इसलिए और कोई उपाय न देखकर प्रेमचंद ने अपनी प्रथम पत्नी को त्याग दिया। श्रीमती शिवरानी देवी से उनका दूसरा विवाह १९०५ के फागुन में हुआ। वे बाल विधवा थीं, और प्रेमचंद ने उस जमाने में उनसे विवाह कर बड़ी हिम्मत का परिचय दिया था। इस विवाह का विरोध प्रेमचन्द के सभी घर वालों ने किया था। पर प्रेमचंद अपनी धुन के पक्के थे।

कुछ रचनायें प्रकाशित

श्रीमती शिवरानी देवी के साथ शादी होने के पहले ही प्रे

फिर गुड़ खाया जाने लगा। इस प्रकार गुड़ आधा हो गया। जब उन्होंने यह हालत देखी तो वे डरे, और उन्होंने जाकर चाभी को कुएं में डाल दिया। जब बाद को गुड़ की जरूरत पड़ी तो ताला तोड़कर गुड़ निकाला गया।

धुन के पक्के

यह साफ मालूम हो गया कि गुड़ खाया गया है। इस पर उनकी चाची उन पर बहुत नाराज हुईं। इस घटना से यह पता लगता है कि जिन्होंने युग-युग के लिए अमर साहित्य की सृष्टि की, उन्होंने बचपन कितनी गरीबी में बिताया। इतनी प्रतिकूल अवस्था में पलकर भी वे बड़े हो सके, यह उनकी अद्भुत लगन के कारण है। कभी भी उन्होंने धैर्य नहीं छोड़ा और हमेशा अपने मार्ग पर अटल रूप से चलते रहे। कितनी ही तकलीफें उठाईं पर उन्होंने साहित्य का अनुशीलन नहीं छोड़ा।

शादी के लिए खुद बाँस काटे

उनकी गरीबी का एक और अत्यंत कष्टकर प्रमाण यह है कि उन्होंने अपनी शादी के लिए आप ही बाँस काटे। शादी का जो मंडप बना था उसे छाने के लिए जिन बाँसों की आवश्यकता थी उन्हें इस प्रकार प्राप्त किया गया।

अनमेल विवाह

उनका यह विवाह बस्ती जिले के मेंहदावल तहसील के रामापुर गाँव में हुआ था। जिनके साथ विवाह हुआ था, वे वहाँ के जमींदार की पुत्री थीं। यह विवाह बहुत अनमेल था और सफल नहीं हुआ। इस विवाह से कोई भी खुश नहीं हुआ।

पिता की मृत्यु पर सारा बोझ पड़ा

विवाह के बाद एक साल भी न गुजरा था कि उनके पिता

का देहांत हो गया। सारी गृहस्थी का भार उन पर आ पड़ा। वे इन दिनों काशी के क्वींस कालेजियट स्कूल में पढ़ते थे। हैसियत यह थी कि फीस माफ थी। रोज देहात से आते और जाते थे। सबेरे आठ बजे घर से निकलते और पढ़-पढ़ाकर, ट्यूशन कर, शाम को छः बजे घर लौटते थे। सब मिलाकर उन्हें रोज कम-से-कम पैदल पाँच मील का चक्कर करना पड़ता था।

इंटर और बी. ए. में फेल

फिर भी पढ़ना न छूटता था। उधार पर सब काम चल रहा था। बड़े शौक से उन्होंने एक गरम कोट बनवाया था, उसे मजबूर होकर दो रुपयों में बेच देना पड़ा। फिर भी वे निराश नहीं हुए और पढ़ते गए। पर पढ़ने का समय नहीं मिलता था, इस कारण उनका गणित बहुत कमजोर था और वे कई बार इंटर में फेल हुए। बहुत बाद में चलकर उन्होंने इंटर और बी. ए. पास किया।

शिवरानी देवी से विवाह

जैसा कि पहले ही संकेत किया जा चुका है कि इनका प्रथम विवाह नितांत असफल रहा। इसलिए और कोई उपाय न देखकर प्रेमचंद ने अपनी प्रथम पत्नी को त्याग दिया। श्रीमती शिवरानी देवी से उनका दूसरा विवाह १९०४ के फागुन में हुआ। वे बाल विधवा थीं, और प्रेमचंद ने उस जमाने में उनसे विवाह कर बड़ी हिम्मत का परिचय दिया था। इस विवाह का विरोध प्रेमचन्द के सभी घर वालों ने किया था। पर प्रेमचंद अपनी धुन के पक्के थे।

कुछ रचनायें प्रकाशित

श्रीमती शिवरानी देवी के साथ शादी होने के पहले ही प्रेम-

चन्द की कुछ रचनायें प्रकाशित हो चुकी थीं। उनके कथन के अनुसार तो उन्होंने उपन्यास लिखना तो १९०१ से प्रारम्भ किया था। उनका एक उपन्यास १९०३ में प्रकाशित हुआ, और दूसरा १९०४ में। प्रेमचन्द ने १९०७ से गल्प लिखना प्रारम्भ किया।

डिप्टी इन्सपेक्टर बने

१९०५ के चैत्र मास में प्रेमचंद डिप्टी इंसपेक्टर हो गये। इन दिनों उनका जीवन अत्यंत नियमित था। वे प्रतिदिन चार बजे उठते थे। फिर दैनिक कर्मों से निवृत्त होने के बाद वे जमकर लिखते थे। उनकी कलम जब एक बार चल पड़ती तो फिर रुकने का नाम नहीं लेती थी। डिप्टी इंस्पेक्टरी के सिलसिले में प्रेमचंद को स्कूलों का मुआइना करने दौरे पर जाना पड़ता। पर दौरे पर भी वे अपनी साहित्य-सेवा जारी रखते।

अफसर के विषय में धारणा

प्रेमचंद को अफसरी प्रवृत्तियों से घृणा थी। वे कभी भी बड़ा मुआइना नहीं करते थे, और इस काम को वे अपने मातहत कर्मचारियों पर छोड़ देते थे। श्रीमती शिवरानी देवी के अनुसार उनका कहना था कि अफसर बनकर इन्सान इंसान नहीं रह जाता। ईश्वर मुझे इससे हमेशा दूर रखे। वह जिस हालत में रहते, हमेशा खुश रहते थे। उनको दुनियावी चीजों के पीछे रंज न था।

उनके साहित्य से सरकार की नाराजी

१९०५ में उनका दूसरा उपन्यास 'प्रेमा' नाम से प्रकाशित हुआ। बाद में इसी उपन्यास का नाम 'विभव' पड़ा। यह उपन्यास उर्दू में भी 'हमखुर्मा व हमसवाब' नाम से छप चुका था।

१९०६ के लगभग उनका उर्दू में 'सोजे वतन' नाम से एक कहानी संग्रह निकला। यह पुस्तक कानपुर के जमाना प्रेस में निकली थी। उस कहानी संग्रह में कोई भी कहानी आपत्तिजनक नहीं थी। पर उस समय के कलेक्टर के सामने तो 'सोजे वतन' (देश की जलन) शब्द ही से बगावत का भास होता था। उसने प्रेमचंद को बुलाया। उन दिनों वे अपने कुटुंब समेत महोबा में रहते थे। जिस समय कलेक्टर की आज्ञा पहुंची, उस समय वे दौरे पर थे। वे रातभर बैलगाड़ी पर चलने के बाद कलेक्टर के पास पहुंचे।

सारी कापियां जब्त

पहुँच कर उन्होंने देखा कि कलेक्टर की मेज पर 'सोजे वतन' की एक प्रति पड़ी है। वहां उनसे कलेक्टर ने पूछा कि क्या 'सोजेवतन' के लेखक वही थे। प्रेमचंद ने स्वीकार किया कि वह पुस्तक उन्होंने लिखी है। इस पर कलेक्टर ने कहा कि वे कहानियों के द्वारा विद्रोह फैला रहे हैं। उसने उन्हें आदेश दिया कि उपर्युक्त पुस्तक की सारी प्रतियां उनके पास भेज दी जायें। कलेक्टर ने उन्हें भविष्य में न लिखने की चेतावनी भी दी।

उपनाम से लिखना

पर प्रेमचंद ने यह मुसीबत उठाने के बाद साहित्य से विमुख होने की कल्पना तक नहीं की। वे अपने पूर्व निश्चय पर अडिग रहे। हां, उन्होंने अब किसी उपनाम से लिखने का इरादा किया।

'सोजेवतन' की कापियां जलाई गई

कानपुर से जब 'सोजेवतन' का पार्सल आया, तब प्रेमचंद ने एक प्रति को अपने पास रखकर बाकी सब प्रतियां कलेक्टर

के पास भेज दीं। वहां कलेक्टर के आदेशानुसार वे सब प्रतियां अग्निदेव को भेंट हो गईं।

बीमारी के कारण नौकरी से इस्तीफा

उन्होंने अपने लिखने का क्रम जारी रखा। कुछ दिनों के बाद उनको पेचिश की बीमारी हो गई, और लाचार होकर उन्होंने नौकरी छोड़ दी। डिप्टी इन्सपेक्टरी छोड़ने के बाद वे बस्ती में जाकर शिक्षक हो गये। वहां उनकी साहित्य सेवा नियमित रूप से जारी रही। वे कहानी, लेख आदि लिखते ही रहते थे।

विद्यार्थी जी का प्रभाव

स्वर्गीय श्री गणेश शंकर विद्यार्थी जी कानपुर से 'प्रताप' निकालते थे। १९१३ के लगभग वे 'प्रताप' कार्यालय में जा पहुंचे। वहां उन्होंने देखा कि विद्यार्थी जी छापेखाने का काम अपने हाथों से कर रहे हैं। इस बात से वे बड़े प्रभावित हुए और लौटकर उन्होंने विद्यार्थी जी की बहुत प्रशंसा की। उन्होंने भी नौकरी का त्याग कर विद्यार्थी जी की भांति साहित्य सेवा करने की कामना प्रगट की। पर प्रेमचन्द के ऊपर तो सारे घर का भार था।

एफ. ए. की परीक्षा दी

साहित्य सेवा के साथ-साथ प्रेमचन्द अपनी विश्वविद्यालय की परीक्षाओं की भी तैयारी करते रहे। १९१४ में उन्होंने प्राइवेट तौर पर एफ. ए. की परीक्षा दी। परीक्षा के दिनों में भी उन्होंने अपनी साहित्य सेवा का परित्याग नहीं किया।

नौकर होने पर भी काम स्वयं करते थे

यों तो बस्ती में रहते समय भी गरीबी ने उनका पिंड नहीं छोड़ा था, पर इस समय उनकी हालत कुछ अच्छी थी। इस

समय उनके यहां एक नौकर भी था। पर प्रेमचन्द अपना काम स्वयं करते थे। दूसरों पर निर्भर रहना तथा दूसरों से काम लेना उन्हें ज़रा भी पसंद नहीं था। श्रीमती शिवरानी देवी के शब्दों में—

"नौकर दरवाजे पर बैठा रहता था, लेकिन अन्दर आकर वे पानी पीते थे। धोती भी खुद धो लेते थे, यद्यपि नौकर खाली ही रहता। कभी-कभी मैं इन हरकतों पर बिगड़ भी जाती और कहती कि नौकर फिर क्यों है? आप बोलते—अपनी ज़रूरतें खुद पूरी करना आदमी का धर्म है। आज तो नौकर है, हो सकता है कि कभी नौकर न रहे; फिर मैं पांच रुपये का नौकर तो खुद था।"

गरीब पर कर्तव्यपरायण

उनका पेट खराब हो गया, और पाचनशक्ति बिगड़ गई। हाज़मा ठीक करने के लिये इलाज कराया गया। पर वे जल्दी अच्छे नहीं हुए। उन्हें छै महीने की छुट्टी लेनी पड़ी। इस छुट्टी के अवसर पर उन्हें केवल २५) वेतन मिलता था, जिसमें से १०) वे अपनी विमाता को भेज देते थे, और १५) अपने भाई के पास (जो झांसी में पढ़ता था) भिजवा देते थे। अपना खर्च शायद वे अपने लेख तथा कहानियों से होने वाली आमदनी से चलाया करते थे। श्रीमती शिवरानी देवी उस समय अपने पिता के यहां रहती थीं।

गोरखपुर तबादला

बस्ती के बाद उनका तबादला गोरखपुर में हुआ। यहां भी उनका वही क्रम चलता रहा। साहित्य सेवा करने के साथ-साथ यहां उन्होंने बी. ए. की परीक्षा के लिये भी तैयारी की। गोरख-

पुर में रहते समय एक ऐसी घटना हो गई जिसमें उनके स्वाभिमान का परिचय मिलता है।

इन्स्पेक्टर से लड़ाई

ठंड का मौसम था। स्कूल का इनस्पेक्टर मुआइना करने गोरखपुर आया। प्रेमचंद ने इनस्पेक्टर के साथ रहकर उसे स्कूल दिखा दिया। स्कूल की छुट्टी होने पर वे अपने घर चले आये। वे दरवाजे के पास आराम कुर्सी पर लेटे समाचार पत्र देख रहे थे। उसी समय इनस्पेक्टर की मोटर वहां से गुजरी। प्रेमचंद ने उस इनस्पेक्टर का अभिवादन नहीं किया। यह उसके लिये नई बात थी। कुछ दूर जाकर इनस्पेक्टर ने मोटर खड़ी कर उनके पास अपना चपरासी भेजा कि वह उन्हें बुला लाये। बुलाये जाने पर वे उसके पास पहुंचे।

उन्होंने कहा—'कहिये क्या बात है ?'

इनस्पेक्टर ने इस पर कहा—तुम बड़े घमण्डी मालूम होते हो। तुम्हारा अफ़सर तुम्हारे सामने से गुज़रे, और तुम उठकर सलाम भी नहीं कर सकते।

प्रेमचंद ने इनस्पेक्टर से यह सुनकर जवाब दिया—मैं केवल तब तक नौकर हूं, जब तक मैं स्कूल में रहता हूं। काम करने के बाद मैं अपने घर का राजा हूं। आपने मुझे बुलाकर अच्छा काम नहीं किया। मुझे इस बात का अधिकार है कि मैं आप पर मानहानि करने का मुकदमा चलाऊं।

प्रेमचन्द के मुंह से यह मुंहतोड़ जवाब पाकर इन्स्पेक्टर चुपचाप चला गया। इसके बाद उन्होंने उस पर मुकदमा चलाने का इरादा भी किया, परंतु उनके मित्रों ने उन्हें ऐसा करने से रोक लिया।

सेवासदन लिखा गया

गोरखपुर और बस्ती में रहते समय उन्होंने अपना प्रथम हिंदी उपन्यास 'सेवा सदन' लिखा था। वे बी. ए. की परीक्षा भी पास कर चुके थे। इसी समय उन्होंने एक मारवाड़ी के साझे में कलकत्ता में प्रेस लेने का इरादा किया। परन्तु इस साझेदारी में असली मुनाफ़ा तो मारवाड़ी ही को होता था। अतएव श्रीमती शिवरानी के कारण यह नहीं हो सका।

सरकारी नौकरी छोड़ने का इरादा।

सन् १९२० में प्रेमचन्द फिर बीमार हो गये। उसी समय असहयोग आंदोलन तूफ़ान की तरह समस्त देश में फैल चुका था। महात्माजी गोरखपुर आये। बीमार होते हुए भी वे अपनी पत्नी तथा बच्चों सहित उनका भाषण सुनने गये। महात्माजी के भाषण को सुनकर उनके मन में सरकारी दासता के विरुद्ध उदासीनता भर गई। वे सरकारी नौकरी छोड़ने का इरादा करने लगे।

इस्तीफा दे ही दिया

उस समय उनकी शारीरिक दशा ठीक नहीं थी। आमदनी का कोई दूसरा जरिया भी नहीं था। पर उनके भीतर समाया देशप्रेम उन्हें राष्ट्र की पुकार पर कार्य करने को बाध्य कर रहा था। अन्त में उन्होंने एक दिन अपने हैडमास्टर को अपना त्यागपत्र थमा ही दिया। हैडमास्टर ने त्यागपत्र देखकर उन्हें बहुत ऊंच-नीच समझाया, और एक सप्ताह तक उनका इस्तीफ़ा आगे नहीं भेजा। पर उन्होंने जो सोच लिया था, वही किया।

चर्खों की दूकान

सरकारी नौकरी छोड़ने के बाद प्रेमचंद गोरखपुर के प्रसिद्ध

से कुछ रुपये मांगे। प्रेमचंद स्वयं कठिनाई में थे। परंतु द्रवित होकर उन्होंने शिवरानीजी से कहकर उन्हें १५) दिलवा दिये। उन महाशय ने वादा किया कि कुछ दिनों के भीतर ही रुपये वापिस कर देंगे। पर एक सप्ताह के बाद रुपये वापिस करने के बजाय वे सपरिवार आकर उनके पास टिक गये। तीन दिन बाद प्रेमचंद से उन्होंने २०) और मांगे। उन्होंने शिवरानीजी से कह-सुनकर उन्हें १५) और दिलाये। यद्यपि उस व्यक्ति ने रुपये जल्दी वापिस करने का आश्वासन दिया था, पर बहुत समय बीतने पर भी उसने रुपये वापिस न किये।

एक अन्य सज्जन

इसी से मिलती-जुलती एक दूसरी घटना भी है। उन्हें ग्वालियर से एक पत्र मिला। पत्र-प्रेषक महाशय ने लिखा कि यदि उन्हें १००) मिल जायं, तो उन्हें १००) मासिक की एक नौकरी मिल जाय। उन महोदय ने अपने पत्र में यह जाहिर किया कि दो महीने के भीतर वह ५०) प्रतिमास देकर ऋण को चुका देगा। प्रेमचंद ने दयार्द्र होकर शिवरानी जी से कह-सुनकर उन्हें रुपये भिजवा दिये। कुछ दिनों के उपरांत वे सज्जन उनके घर आ धमके। दो-तीन दिन हो जाने पर भी जब उन्होंने अन्यत्र जाने का नाम नहीं लिया, तब शिवरानी जी के आग्रह से उन्हें होटल में ठहरा दिया गया। होटल में भी वे दस-पंद्रह दिन टिके रहे। रुपये उन्होंने तब भी वापिस नहीं किये। कुछ दिनों बाद वे महाशय फिर प्रेमचंद के पास पहुंचे। उन्होंने इस प्रकार प्रेमचंद से कई बार रुपये ऐंठे। जब प्रेमचंद जी को यह मालूम हुआ कि यह व्यक्ति फरार है, तभी वह अपनी बीबी को लेकर चला गया।

'मर्यादा' पत्र में

मारवाड़ी विद्यालय की नौकरी उन्हें इस कारण अधिक पसंद नहीं थी कि वहां के अधिकारी हर मामले में बहुत हस्तक्षेप किया करते थे। इन्हीं दिनों उन्हें काशी के प्रसिद्ध देशभक्त रईस श्री शिवप्रसाद गुप्त द्वारा प्रकाशित तथा श्री सम्पूर्णानंद द्वारा संपादित 'मर्यादा' में १५०) महीने पर एक नौकरी मिल गई। इस कारण उन्होंने मारवाड़ी विद्यालय की नौकरी छोड़ दी। अब वे चाहते थे कि साहित्य सेवा में ही सारा समय दें।

उनको अभिनंदित करने पर पचड़ा

मारवाड़ी विद्यालय के छात्रों तथा शिक्षकों में वे बहुत जनप्रिय थे। जब उन लोगों ने सुना कि वे इस विद्यालय को छोड़कर जा रहे हैं, तो उन्होंने उन्हें एक अभिनंदन पत्र देने का निश्चय किया। पर अधिकारी वर्ग को यह बात पसंद नहीं थी। उन्होंने जोर लगाया कि अभिनंदन पत्र न दिया जाय। पर शिक्षकों तथा छात्रों ने इसे मानने से इन्कार किया। उन्हें अभिनंदन पत्र दिया गया। इसके फलस्वरूप चार-पांच शिक्षक अधिकारियों के द्वारा निकाल दिये गये। कोई बीसेक छात्र इस पर विद्यालय से ही अलग हो गये।

काशी विद्यापीठ में

वे 'मर्यादा' में डेढ़ साल तक काम करते रहे। इसके बाद 'मर्यादा बंद हो गई। कुछ दिनों बाद वे काशी विद्यापीठ के विद्यालय के हेडमास्टर हुए। यहाँ भी वे छात्रों में बहुत प्रिय थे। छात्र इस बात को जानते थे कि वे हिंदी के सर्वश्रेष्ठ उपन्यासकार हैं। स्मरण रहे कि उन दिनों तक केवल दो ही पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, और कुछ गल्पसंग्रह निकले थे। पर इतने

होने उनकी प्रसिद्धि हो चुकी थी। [illegible] उनके विरुद्ध कुछ आवाजें भी उठ रही थीं।

यहां भी नहीं बना

विद्यापीठ में भी कुछ दिनों तक अध्यापन करने के बाद अधिकारियों की तरफ से कुछ इस प्रकार का [illegible] हो गई कि वे आदतन खद्दरधारी नहीं हैं, इसी पर झगड़ा हो गया, और उन्होंने वहां से स्तीफा दे दिया। यह एक [illegible] बात है कि एक राष्ट्रीय विद्यालय में भी उनको शिकायत का मौका मिला, और वे वहां से भी हटने को बाध्य हुए।

काफी आमदनी हो सकती थी

अब वे गाँव में लौट गये और वहीं पर लोगों से मिल-जुल कर रहने लगे। यद्यपि उनकी कुछ ही रचनायें अब तक प्रकाशित हुई थीं, पर उनकी बिक्री इतनी अधिक थी कि यदि प्रकाशक उन्हें ठगने की फिक्र में न रहते, और कागज के मूल्य पर उनसे उपन्यास न लेते, तो उन्हें इतनी काफी आमदनी हो जाती कि वे घर बैठे आगे साहित्य चर्चा कर सकते।

फिर गांव के जीवन में

पर उनकी तो नीति यह थी कि जैसी भी परिस्थिति हो उससे पूरा फायदा उठाया जाय। वे तो गांव के थे ही, पर अब की बार उन्होंने अपने को और भी गाँव के जीवन में मिला दिया। गांव के काश्तकारों से वे कुछ अलग रूप में नहीं बल्कि उन्हीं में से एक के रूप में मिलते थे। कोई नया कानून बनता तो वे उन्हें उसे समझा देते। गाँव की स्त्रियों के साथ बेटी, चाची, भाभी आदि का सम्बन्ध बनाकर चलते थे। सच तो यह है कि इस युग में उन्होंने आगे के उपन्यासों के लिए पात्र तथा कथानक ढूंढ

डाले। सब उनसे खुश रहते, और उनसे अपने घर का सुख-दुख बता कर सलाह मांगते। किसी तरह गुज़ारा हो रहा था।

अलवर के राजा का निमन्त्रण

इसी बीच में रंगभूमि उपन्यास छपने लगा था। न मालूम कैसे अलवर के राजा साहब को यह ख्याल आया कि प्रेमचन्द को अपने यहाँ बुलाकर रखना चाहिए। वे उपन्यास, कहानियों के शौकीन थे, इसलिए शायद पुराने राजाओं के ढर्रे पर यह चाहते थे कि उनके दरबार में यह रत्न रहे।

पर निमन्त्रण ठुकरा दिया

राजा साहब की तरफ से पांच-छे आदमी आये, और उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि वे अलवर चलें, ४००) रु० प्रतिमास लें, मोटर बंगला मुफ्त। सपरिवार निमंत्रण था। पर प्रेमचन्द जी ने राजा साहब के निमंत्रण को यह कह कर अस्वीकार क दिया कि वे बागी आदमी हैं, उनके लिए इतना ही बहुत है राजा साहब उनकी रचनाओं को पढ़ते हैं।

इस प्रकार राजा के निमंत्रण को ठुकरा देना उनके नै साहस को व्यक्त करता है। उस समय उनकी आर्थिक ह बहुत मामूली थी, किसी तरह से चल रहा था, इसलि प्रकार से ४००) रु० की नौकरी को छोड़ देना बहु कुर्बानी थी।

रंगभूमि से ख्याति

'रंगभूमि' के बाद उनकी साहित्यिक ख्याति बहुत 'सेवासदन' और प्रेमाश्रम के बाद कुछ लोग यह समर प्रेमचन्द शायद आगे कोई इस प्रकार उच्च कोटि क सृजन न कर सकें, पर रंगभूमि तो इन सबसे बढ़कर

इसमें संदेह नहीं कि उस समय तक प्रकाशित सारे हिन्दी साहित्य में इससे बढ़कर कोई उपन्यास नहीं था।

रायसाहबी नहीं ली

ब्रिटिश सरकार ने जब इस प्रकार प्रेमचन्द की ख्याति देखी, तो उसका ध्यान भी उनकी तरफ गया। सर मैलकम हेली उन दिनों युक्त प्रांत के गवर्नर थे। उन्होंने एक मित्र के जरिये से प्रेमचन्द को यह खबर भेजी कि यदि वे स्वीकार करें तो उन्हें राय साहब का खिताब दिया जा सकता है' पर उन्होंने यह कह कर उस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया कि ऐसा करने पर मैं सरकार का पिट्ठू हो जाऊंगा, जब कि मेरी अभिलाषा यह है कि मैं जनता की सेवा करूं। वे सरकारी आज्ञा या इंगित के अनुसार साहित्य रचना करने के लिए तैयार नहीं थे।

स्मरण रहे कि सरकार केवल रायसाहबी ही नहीं दे रही थी। यह तो केवल आरम्भ मात्र था। सरकार उन्हें अन्य तरीके से भी खरीदने के लिए उत्सुक थी। जब उन्होंने खिताब लेने से अस्वीकार कर दिया तब स्वाभाविक रूप से आगे की कोई बात हो न सकी।

१९३० में जेल जाना चाहते थे

इसी के बाद १९३० का सत्याग्रह आंदोलन छिड़ गया। यद्यपि उन्होंने अब तक राष्ट्रीय आंदोलन के साथ बराबर सक्रिय सहानुभूति दिखलाई थी, पर वे स्वयं जेल आदि नहीं गये थे। इस बीच में वे आकर 'माधुरी' में संपादक के रूप में काम करने लगे थे। उनकी तबियत खराब रहा करती थी, फिर भी वे जेल जाने की बात सोच रहे थे।

शिवरानी जी आगे जेल पहुंच गईं

पर शिवरानी जी ने यह सोचा कि सब कुछ देखते हुए उन्हीं

का जेल जाना उचित है। उनका ऐसा ख्याल था कि पति तथा पत्नी दोनों में से एक का जाना ही यथेष्ट है। तदनुसार वे धड़ल्ले से पिकेटिंग करने लगीं, और एक दिन गिरफ्तार हो गईं। उनके जेल जाने से प्रेमचंद के जेल जाने का रास्ता बंद हो गया। पर शिवरानी जी जो समझ कर जेल गई थीं, वह पूरा नहीं हुआ। उन्होंने सोचा था कि यदि वे जेल चली जायंगी, तो घर का काम-काज सम्हालने के लिये उन्हें बाहर रहना पड़ेगा, साथ ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ने से बच जायगा। पर हुआ इसके विपरीत ही।

प्रेमचन्द जेल न जा सके

प्रेमचंद जी अपनी पत्नी के जेल जाने पर बराबर परेशान रहे, और उनका स्वास्थ्य पहिले से अधिक बिगड़ गया। उनका वजन भी घट गया। इस प्रकार प्रेमचंद अंत तक जेल न जा सके। पर इससे क्या? उनकी सहानुभूति सदा राष्ट्रीय आंदोलन के साथ रही।

प्रकाशन की ओर रुचि

प्रकाशकों की बेईमानियों से तंग आकर प्रेमचंद यह चाहते थे कि अपनी पुस्तकों का आप प्रकाशन करें। साथ ही वे यह चाहते थे कि ऐसा कोई पत्र हो, जिसमें वे अपने भावों को व्यक्त कर सकें, और हिंदी जगत के लिये वह एक आदर्श के रूप में हो जाय। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वे प्रेस लेने की बात सोच रहे थे।

प्रेस मैनेजर पर बिगड़े

यह एक दुखद बात है कि एक उच्च कोटि के लेखक होते हुए भी उन्हें प्रकाशकों से परेशान होकर अपनी रचनाओं को

इसमें संदेह नहीं कि उस समय तक प्रकाशित सारे हिन्दी साहित्य में इससे बढ़कर कोई उपन्यास नहीं था।

रायसाहबी नहीं ली

ब्रिटिश सरकार ने जब इस प्रकार प्रेमचन्द की ख्याति देखी, तो उसका ध्यान भी उनकी तरफ गया। सर मैलकम हेली उन दिनों युक्त प्रांत के गवर्नर थे। उन्होंने एक मित्र के जरिये से प्रेमचन्द को यह खबर भेजी कि यदि वे स्वीकार करें तो उन्हें राय साहब का खिताब दिया जा सकता है। पर उन्हें यह कह कर उस प्रस्ताव को मानने से इन्कार कर दिया कि ऐसा करने पर मैं सरकार का पिट्ठू हो जाऊँगा, जब कि मेरी अभिलाषा यह है कि मैं जनता की सेवा करूं। वे सरकारी आज्ञा या इंगित के अनुसार साहित्य रचना करने के लिए तैयार नहीं थे।

स्मरण रहे कि सरकार केवल रायसाहबी ही नहीं दे रही थी। यह तो केवल आरम्भ मात्र था। सरकार उन्हें अन्य तरीके से भी खरीदने के लिए उत्सुक थी। जब उन्होंने खिताब लेने से अस्वीकार कर दिया तब स्वाभाविक रूप से आगे की कोई बात हो न सकी।

१९३० में जेल जाना चाहते थे

इसी के बाद १६३० का सत्याग्रह आंदोलन छिड़ गया। यद्यपि उन्होंने अब तक राष्ट्रीय आंदोलन के साथ बराबर सक्रिय सहानुभूति दिखलाई थी, पर वे स्वयं जेल आदि नहीं गये थे। इस बीच में वे आकर 'माधुरी' में संपादक के रूप में काम करने लगे थे। उनकी तबियत खराब रहा करती थी, फिर भी वे जेल जाने की बात सोच रहे थे।

शिवरानी जी आगे जेल पहुंच गईं

पर शिवरानी जी ने यह सोचा कि सब कुछ देखते हुए उन्हीं

का जेल जाना उचित है। उनका ऐसा ख्याल था कि पति तथा पत्नी दोनों में से एक का जाना ही यथेष्ट है। तदनुसार वे धड़ल्ले से पिकेटिंग करने लगीं, और एक दिन गिरफ्तार हो गई। उनके जेल जाने से प्रेमचंद के जेल जाने का रास्ता बंद हो गया। पर शिवरानी जी जो समझ कर जेल गई थीं, वह पूरा नहीं हुआ। उन्होंने सोचा था कि यदि वे जेल चली जायंगी, तो घर का काम-काज सम्हालने के लिये उन्हें बाहर रहना पड़ेगा, साथ ही उनका स्वास्थ्य बिगड़ने से बच जायगा। पर हुआ इसके विपरीत ही।

प्रेमचन्द जेल न जा सके

प्रेमचंद जी अपनी पत्नी के जेल जाने पर बराबर परेशान रहे, और उनका स्वास्थ्य पहिले से अधिक बिगड़ गया। उनका वजन भी घट गया। इस प्रकार प्रेमचंद अंत तक जेल न जा सके। पर इससे क्या? उनकी सहानुभूति सदा राष्ट्रीय आंदोलन के साथ रही।

प्रकाशन की ओर रुचि

प्रकाशकों की बेईमानियों से तंग आकर प्रेमचंद यह चाहते थे कि अपनी पुस्तकों का आप प्रकाशन करें। साथ ही वे यह चाहते थे कि ऐसा कोई पत्र हो, जिसमें वे अपने भावों को व्यक्त कर सकें, और हिंदी जगत् के लिये वह एक आदर्श के रूप में हो जाय। इन उद्देश्यों की पूर्ति के लिये वे प्रेस लेने की बात सोच रहे थे।

प्रेस मैनेजर पर बिगड़े

यह एक दुखद बात है कि एक उच्च कोटि के लेखक होते हुए भी उन्हें प्रकाशकों से परेशान होकर अपनी रचनाओं को

आप छापने की बात सोचनी पड़ी। प्रेस लेने का अर्थ यह था कि उन्हें उसमें काफी समय देना पड़ता था। जब प्रेस हुआ, तो मज़दूर आये, और एक बार उनके प्रेस में हड़ताल भी हो गई। हड़ताल के अवसर पर उन्होंने मैनेजर को बहुत बुरा-भला कहा। उन्होंने सारा दोष मैनेजर पर ही धर दिया, और उसे कहा कि मजदूरों के साथ बेकार में छेड़खानी करनी ठीक नहीं है।

'हंस' और 'जागरण' से घाटा

जो कुछ भी हो इस प्रकार उनका काफी समय प्रेस के चलाने की फिक्र में लग जाता था। वे 'हंस' नाम से एक मासिक पत्रिका तथा 'जागरण' नाम से एक पाक्षिक पत्र चलाते थे। 'हंस' पर ज़मानत देनी पड़ी। 'हंस' अच्छा चला, पर 'जागरण' के केवल बारह अंक निकले और ग्राहक-संख्या दो सौ से आगे नहीं बढ़ी। इन सारे कामों में उन्हें हजारों का घाटा रहा।

फिल्म-कम्पनी की नौकरी

इस घाटे को पूरा करने के लिये उन्होंने एक फिल्म कम्पनी से आठ हज़ार रुपये साल पर कंट्रेक्ट कर लिया। उनका इरादा था कि इस प्रकार वे जो कुछ कमायेंगे उससे 'हंस' का घाटा पूरा होता रहेगा।

फिल्मों का कटु तजुर्बा

इसी विचार से वे बंबई गये। पर थोड़े ही दिन में उन्हें यह दुखद तजर्बा हुआ कि उनके साथ फिल्म वालों का पट नहीं सकता। इन्हीं दिनों वे 'गोदान' भी लिख रहे थे।

'मजदूर' नाम से उन्होंने एक फिल्म तैयार किया, पर यह फिल्म कुछ अधिक सफल नहीं रहा। प्रेमचंद को इस फिल्म में

अधिक स्वतंत्रता नहीं मिली। डाइरेक्टर साहब जो मन में आता उस दृश्य को उसमें घुसा देते थे। डाइरेक्टर का यह कहना था कि हमने कोई जनता के चरित्र को सुधारने का ठेका नहीं लिया है। जैसे और सब व्यापार करते हैं, वैसे हम लोग भी करते हैं। इसलिये वे निराश होकर वहां से लौट आये।

इंगलैंड जा न सके

इस बीच में सिनेमा वालों ने उन्हें इंग्लैंड भी ले जाना चाहा, पर शिवरानी जी ने उनके स्वास्थ्य को देखते हुए उन्हें इतनी दूर की यात्रा करने से रोका, और वे इंगलैंड नहीं गये। यदि वे इंग्लैंड जा पाते, तो संभव है कि उनके उपन्यास में और कोई दिशा आती।

लगातार बीमारी

इसके बाद वे लगातार बीमार रहे। १९३५ में वे बंबई से अपने गांव पहुंचे। उनके मकान की छत खराब हो रही थी। उन्होंने खुद उसे बनवाया। वे मजदूरों से घंटों बातचीत किया करते थे। बीमार रहने पर भी उन्होंने लिखने का क्रम जारी रखा।

१९३६ के १६ जून को आपके पेट में बहुत अधिक दर्द हुआ। फिर कै आने लगीं। साथ ही खून के भी दस्त आये। पहले होम्योपैथिक इलाज हुआ और फिर ऐलोपैथिक इलाज हुआ। वे इससे कुछ संभले।

देहांत

इसी बीच में आज पत्र के दफ्तर में गोर्की की स्मृति में एक

सभा हुई। उसमें उन्होंने भाषण दिया। बीमार होने पर भी वे इस सभा में इस कारण गये कि वे गोर्की के बहुत जबर्दस्त भक्त थे। वे उन दिनों मंगलसूत्र नामके उपन्यास को लिख रहे थे। पर इसे समाप्त नहीं कर पाये, और आठ अक्टूबर १९३६ को देहांत हो गया।

प्रेमचंद के उपन्यास

उनकी संख्या और क्रम

प्रेमचंद ने सब मिलाकर कुल दस उपन्यास लिखे। ग्यारहवां 'मंगलसूत्र' वे अधूरा छोड़ गये। ऐसा ज्ञात होता है कि 'वरदान' और प्रतिज्ञा सब से पहले लिखे गये, पर इनके लिखने का ठीक समय मालूम नहीं। पर इतना निश्चित है कि वे किसी-न-किसी रूप में 'सेवासदन' से पहले लिखे गये थे। हम इनमें प्रेमा को नहीं गिन रहे हैं क्योंकि प्रतिज्ञा प्रेमा का ही परिवर्द्धित रूप है। प्रतिज्ञा के संबंध में ऐसा मालूम होता है कि वह पहले उर्दू में 'हमखुर्मा व हमसवाब' नाम से प्रकाशित हुआ था। यह शायद १९०५ के लगभग की बात है।

इस प्रकार उनके उपन्यासों का क्रम इस प्रकार ठहरता है—

ेमा या प्रतिज्ञा	१९०५
ारदान	इसी के लगभग
ेवासदन	१९१६
ेमाश्रम	१९२२
नेर्मला	१९२३
ंगभूमि	१९२५
कायाकल्प	१९२८
ग़बन	१९३१
कर्मभूमि	१९३२
गोदान	१९३६
मंगलसूत्र	अधूरा छोड़ ग

अन्य रचनायें

इसके अतिरिक्त उन्होंने बहुत सी कहानियां लिखीं। उन्होंने १९०७ से कहानियां लिखना शुरू किया। इस क्षेत्र में उन्हें सब से अधिक अनुप्रेरणा रवींद्रनाथ की कहानियों से मिली। उनकी कई कहानियां प्रकाशित हुई। १९१५ में उनका पहला कहानी-संग्रह निकला, मन्नन द्विवेदी 'गजपुरी' ने इसकी भूमिका लिखी। इसके बाद उनके कई कहानी संग्रह निकले, जो अब 'मान-सरोवर' (८ भाग) में पढ़ी जा सकती हैं।

उन्होंने संग्राम और कर्बला नाम से दो नाटक भी लिखे। इनके अलावा कई पुस्तकों का अनुवाद भी किया। उन्होंने 'महात्मा शेखसादी' आदि की कई जीवनियां भी लिखीं। पर उनकी सब से मुख्य रचनायें उपन्यास के ही रूप में है। इसलिए मैं पहले उनके उपन्यासों की ही आलोचना करूँगा।

जैसा कि बताया गया। वरदान उनके प्रथम उपन्यासों में है। उसका कथाभाग यों है—

वरदान

मुंशी शालिग्राम बनारस शहर के पुराने रईसों में से थे। वे इतने दयालु थे कि साधुसंतों की सेवा में तीस हजार तक की रकम प्रति वर्ष खर्च कर देते थे। वृद्धावस्था में उनको एक पुत्र रत्न प्राप्त हुआ। उस का नाम प्रताप रखा गया। जब प्रताप की अवस्था छः वर्ष की हुई, तब मुंशीजी अपनी पत्नी सुदामा और पुत्र प्रताप को छोड़कर प्रयाग में कुम्भ मेला देखने गये। वे फिर वापिस नहीं लौटे।

मुंशीजी के ऊपर काफ़ी कर्ज था। उनके इस प्रकार चले जाने

सुवामा ने सुशीला और मुंशीजी को इस काम में पूरी पूरी मदद दी। पर प्रताप को कुछ भी अच्छा न लगा। उसने विवाह के किसी भी कार्यक्रम बरात, महफिल आदि किसी में भी कुछ भाग नहीं लिया। वह उदास भाव से मुंह लटकाए चुपचाप बैठा रहा। विरजन भी इस विवाह से खुश नहीं थी।

विरजन का पति कमलाचरण उसी स्कूल में पढ़ता था, जिसमें प्रताप पढ़ता था। स्वभाव से वह आवारा था। उसका अधिकांश समय पतंग लड़ाने, बुलबुल लड़ाने, सिगरेट पीने में व्यतीत होता था। उसके प्रायः सब साथी पक्के बदमाश और गुंडे थे। प्रताप इन लोगों से कुढ़ा तो था ही। उसने सुशीला आदि को जलाने-सुलगाने का एक नया तरीका निकाला। वह प्रतिदिन जब स्कूल से लौटता, तब अपनी मां को सुशीला की उपस्थिति में कमला चरण के दुराचार और लज्जा-हीनता की एक न एक कहानी सुनाता। कभी कमलाचरण द्वारा किसी लड़के की घड़ी गायब करने की खबर होती थी, तो कभी कुछ, और साथ ही मास्टर के हाथों कमलाचरण के पिटने की भी खबर होती थी।

समय समय पर मुंशी संजीवनलाल भी कमलाचरण की इन कहानियों की पुष्टि करते। इसका स्वाभाविक परिणाम यह हुआ कि कमलाचरण की काली करतूतों को सुनते सुनते सुशीला को क्षय रोग ने पकड़ लिया, और अंत में उसकी मृत्यु हो गई।

पंद्रहवां साल लगते न लगते विरजन का गौना हुआ, और वह सुसराल गई। उसके मन में अभी भी प्रताप के प्रति स्नेह भरा हुआ था। कमलाचरण एक दिन विरजन के कमरे में सेंध लगाते हुए पकड़ा गया। डिप्टी साहब ने यह समझा कि वह विरजन

बनारस जा पहुंचा। वह नए पापी की तरह असमंजस में डूब उतराता डिप्टी साहब के भवन में घुसा। एक कमरे में उसने प्रकाश पाया। दरार में से उसने देखा कि वृजरानी सफेद साड़ी पहने, बाल खोले, हाथ में लेखनी लिये भूमि पर बैठे-बैठे कुछ लिख रही है। सौम्यता की इस प्रतिमा को देखकर उसके हृदय का भाव परिवर्तित हुआ। उसने इस पाप के प्रायश्चित स्वरूप आजीवन देशसेवा करने का व्रत अपनाया।

विरजन ने इसी बीच में कविता लिखना प्रारंभ किया। 'कमला' नामक पत्रिका में जब उसकी कवितायें प्रकाशित हुईं, तो ये कवितायें बहुत ही लोकप्रिय हुईं। प्रताप साधु हो गया था। उसका नाम बालाजी पड़ा। उसकी प्रसिद्धि चारों ओर फैलने लगी। वृजरानी ने भी बालाजी के स्वागत में एक कविता लिखी। ये बनारसवालों के आग्रह से वहां आये।

बालाजी की मां सुवामा उन्हें गृहस्थ रूप में देखना चाहती थीं। वे चाहती थीं कि प्रताप माधवी के साथ विवाह कर अपना जीवन सुख से बितायें। माधवी विरजन की एक सखी थी। विरजन ने माधवी के दिल में प्रताप के प्रति प्रेम भर दिया था। विरजन चाहती थी कि वे माधवी के साथ प्रणय सूत्र में बंध जांय। बेचारी बारह वर्ष से इसकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसने रात के समय माधवी को बालाजी के शयनागार में भेजा। पहले तो वह दरवाजे पर खड़ी रही। पर भाग्य से बालाजी के कमरे में लालटेन उलटने से आग लग गई। माधवी ने कमरे में प्रवेशकर आग बुझा दी। बाला जी के जगने पर दोनों में बात चीत हुई। माधवी ने बाला जी के पूछने पर बताया कि उसका विवाह हो गया है। उसके पति को उसकी

परवाह नहीं है, और वे देश की सेवा किया करते हैं। उनकी बातों से वे समझ गये कि इशारा उन्हींकी ओर है।

माधवी के त्याग को देख कर बालाजी का हिमालय सदृश हृदय पिघल गया। बोले—तुम जैसी देवियां भारत की गौरव हैं। मैं बड़ा भाग्यवान हूं कि तुम्हारे जैसी अनमोल वस्तु मेरे हाथ आ रही है। यदि तुमने मेरे लिये योगिनी बनना स्वीकार किया है तो मैं भी तुम्हारे लिये इस संन्यास और वैराग्य को त्याग सकता हूं। जिस के लिये तुमने अपने को मिटा दिया है, वह तुम्हारे लिये बड़े से बड़े बलिदान करने में भी नहीं हिचकिचायेगा।

पर माधवी ने संन्यास लेने का इरादा किया। दूसरे दिन वहां उन्होंने गौशाला का शिलारोपण किया। पण्डितों के दो दलों में होनेवाले दंगों को उन्होंने भाषण देकर शांत किया। इसी समय उन्हें पता लगा कि सदिया नदी के बांध टूट जाने से धन-जन की अपरिमित हानि हुई है। वे फौरन अपने दल सहित उस ओर चल पड़े। माधवी भी योगिनी होकर बालाजी की यश गाथा का गान करने लगी।

कमलाचरण एक अवारा नौजवान

कमलाचरण के चरित्र में एक अवारे नौजवान का अच्छा चित्रण है। वह शुरू में अवारा रहा तो, वराबर अवारा ही रहा, ऐसा न दिखाकर प्रेमचंद ने यह दिखलाया है कि विरजन के प्रभाव में वह कई बार उठने की चेष्टा करता है। पर विरजन से दूर होते ही वह फिर अवारों की मण्डली में फंस जाता है, और अन्त तक अवारापन में ही मारा जाता है।

विरजन का चरित्र

विरजन शुरू से ही प्रताप से प्रेम करती है, पर जब अनमेल विवाह हो गया, तो अपनी धारणा के अनुसार कर्तव्य निभाने में कोई कसर नहीं रखती। वह यह भी जानती है कि प्रताप उससे प्रेम करता है, पर वह माधवी को सामने लाकर प्रताप के प्रेम का मुंह घुमाने की चेष्टा करती है, जिसमें वह पूरी सफल तो नहीं होती, पर इस प्रकार वह एक निर्दोष प्रयास यह समझ कर करती है कि इससे कम से कम प्रताप सुखी हो जायगा। पर होता यह है कि विरजन स्वयं कविता लिखती रह जाती है, माधवी योगिनी हो जाती है और प्रताप वाला-जी के रूप में संन्यासी बना रह जाता है।

शालिग्राम

मुन्शी शालिग्राम के चरित्र में हमें एक ऐसे धर्मात्मा का दर्शन होता है, जो अपने धर्म-कर्मों के कारण अंत तक विरक्त होकर न मालूम कहां चले जाते हैं। अब तो इस टाइप के लोग कम मिलेंगे, पर जिस समय यह उपन्यास लिखा गया था, उस समय ऐसे लोग यथेष्ट थे।

समस्या केवल अनमेल विवाह

इस उपन्यास की सामाजिक पृष्ठभूमि मध्यमवर्ग की है। इसमें यदि कोई समस्या है तो वह इच्छा के विरुद्ध अनमेल विवाह की समस्या है। अनमेल विवाह के कारण किस प्रकार कई व्यक्तियों का जीवन खराब हो जाता है, यह इस उपन्यास में स्पष्ट किया है। अवश्य खैरियत इतनी है कि ये सब लोग कुछ न कुछ रचनात्मक दिशा में जाने की चेष्टा करते हैं।

कुछ त्रुटियां

यह उपन्यास अपेक्षाकृत रूप से पहले का लिखा हुआ है। इसलिये इसमें कुछ रचना संबंधी त्रुटियां अवश्य हैं। कथावस्तु कुछ शिथिल है। माधवी को जिस प्रकार से लाया गया है, उसमें कुछ कष्ट-कल्पना मालूम होती है। प्रताप विरजन की आंखों में जो कुछ भी हो, ऐसा गुणी व्यक्ति नहीं है कि प्रत्येक स्त्री उस पर रीझ ही जाय। इलाहाबाद में ट्राम दिखलाना भी गलत है। यदि प्रेमचंद शहर का नाम न लेते तो वे चाहे जो कुछ लिखते, कोई दिक्कत न होती।

प्रतिज्ञा

वकील अमृतराय और प्रोफेसर दाननाथ दोनों मित्र थे। अमृतराय विधुर थे, और दाननाथ अविवाहित। एक दिन दोनों मित्र विधवा-विवाह पर समाज-सुधारक पंडित अमरनाथ का व्याख्यान सुन रहे थे। व्याख्यान के अंत में उन्होंने उन विधुर-युवकों से हाथ उठाने को कहा जो विधवाओं से शादी कर अपना कर्तव्य पूरा करने के लिए तैयार हैं। सभा में अकेले अमृतराय ने हाथ उठाकर प्रतिज्ञा की।

अमृतराय को अपनी कुमारी साली प्रेमा से प्रेम था। प्रेमा भी उनसे प्रेम करती थी। पर इस प्रतिज्ञा के बाद तो वह रास्ता बंद हो गया। इधर दाननाथ भी प्रेमा के रूप गुणों पर रीझे हुए थे। अमृतराय इस बात से परिचित थे। उन्हें अब दाननाथ के रास्ते से हटने का अवसर मिला। दाननाथ इस बात से खुश तो हुए, पर उनके मन में कुछ हिचकिचाहट रही।

अमृतराय के ससुर बद्रीप्रसाद अमृतराय की यह प्रतिज्ञा सुनकर आगबबूला हो गये। वे निश्चय कर चुके कि ऐसे व्यक्ति के साथ प्रेमा का विवाह न करेंगे, जिसके विचारों में म्लेच्छता आ घुसी हो। प्रेमा की मां ने भी पति के निश्चय का समर्थन ही किया। प्रेमा का हृदय पिता के इस निश्चय से रो उठा। वह तीन वर्षों से अंतःस्थल में अमृतराय की मूर्ति की स्थापना कर उसे अपना प्रेमार्घ्य चढ़ाती आ रही थी, पर विवश थी। उसने

वनिताश्रम खोलने का निश्चय किया। वे इस कार्य के लिये चंदा जमा करने लगे।

उधर पूर्णा के आगमन से कमला और सुमित्रा के बीच की खाई और भी गहरी हो गई। यों तो कमला में अनेकों दुर्गुण थे, पर सभी की धारणा थी कि वह सदाचारी है। पर पूर्णा पर वह मोहित हो गया। संभव है कि उसे सरल, दीन, और आश्रयहीन पाकर कमला के हृदय में कुप्रवृत्तियों का उदय हुआ हो। पूर्णा से तो वह एक प्रकार से निश्चित था ही, पर सुमित्रा उसकी कार्य-सिद्धि मे दीवार बनकर खड़ी थी। वह कभी भी पूर्णा को अकेला नहीं छोड़ती थी। कमला ने यह देखकर सुमित्रा से कहा कि पूर्णा उसके साथ रहने के उपयुक्त नहीं है। पर उस दिन से पूर्णा के साथ सुमित्रा अधिक-से-अधिक रहने लगी।

कमला के मन में पूर्णा को पाने की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। एक दिन वह बाजार से बंगाली मिठाई लाया। उसने सुमित्रा से कहा कि इसमें वह पूर्णा को भी हिस्सा दे। पर सुमित्रा ने ऐसा नहीं किया। इसी प्रकार एक दिन कमला दो साड़ियां लाया। वह एकाएक वहां पहुंचा जहां दोनों साथ बैठी थीं। उसने सुमित्रा से एक साड़ी पूर्णा को देने के लिए कहा। पर सुमित्रा ने ऐसा नहीं किया। केवल यही नहीं उसने कमला को भला-बुरा भी कहा। पूर्णा को सुमित्रा का यह व्यवहार पसन्द नहीं आया।

पूर्णा को ऐसा प्रतीत हुआ कि पति-पत्नी दोनों अलग-अलग कारणों से नाराज हो गये हैं। वह मौका ढूंढने लगी कि कमला-प्रसाद से बातचीत करके वह अपनी हालत साफ कर दे। दस-बारह दिन के बाद आधी रात के समय पूर्णा ने सुमित्रा के कमरे के किवाड़ खुलने की आवाज़ सुनी। उसने देखा कि सुमित्रा

सशंक दृष्टि से चारों ओर ताकती हुई पति के कमरे की तरफ जा रही है। पर कमला की आवाज़ सुनकर वह उल्टे पैरों लौट आई, और अपने कमरे में सो गई।

इसी समय पूर्णा को अपने सुखी दाम्पत्य-जीवन की एक घटना याद आ गई। वह कमला को यह समझाने के लिए कमरे के भीतर घुस आई थी कि भाभी अर्थात् सुमित्रा को बुखार आगया है, इसलिए वह उसे देख आए। पूर्णा उसे समझाने लगी। कमला ने उसे हाथ पकड़ कर अंदर खींच लिया, और द्वार बन्द कर दिया। वह उसके स्पर्श से कांप उठी। अतएव कमला ने उसे छोड़ दिया। इसके बाद कमला ने अनुनय, विनय के पश्चात् प्रेम-निवेदन किया, पर पूर्णा ने उसे मना कर दिया। इसके उपरांत बहुत कहने-सुनने पर वह कुर्सी पर बैठ गई, और उसने कमला के बहुत अनुरोध करने पर उसके द्वारा दी गई साड़ी पहनी। फिर वह अपने कमरे में चली गई। कमला उसके मुख पर होनेवाले भावपरिवर्तनों पर विचार करता रहा। पहले रोष, फिर हास और फिर विराग।

इधर प्रेमा विवाह के उपरांत अपने पति दाननाथ को प्रसन्न करने का जी-जान से प्रयत्न करने लगी। पर दाननाथ के हृदय में अब भी संदेह था कि प्रेमा अमृतराय को प्रेम करती है। इसी संदेह की वजह से वे अमृतराय से द्वेष करने लगे। वे प्रेमा से अमृतराय की निंदा करने लगे। प्रेमा को यह बुरा लगा। इससे दाननाथ की द्वेषाग्नि और बढ़ी। अमृतराय सुधारक थे। इसलिए दाननाथ कट्टर सनातनी हो गए। उन्होंने सनातन धर्म की कट्टरता का समर्थन करते हुए एक भाषण दिया। उन्होंने इस बात की भी चेष्टा की कि अमृतराय की वनिताश्रमवाली योजना विफल हो जाय। अमृतराय दाननाथ के भाषण के अगले दिन

उनके पास गए भी। परंतु वे तो उनके विरुद्ध हो चुके थे। उनके साथ बद्रीप्रसाद और कमला भी अमृतराय के विरुद्ध थे। कमला तो उनके पीछे हाथ धोकर पड़ा ही था।

एक दिन अमृतराय व्याख्यान देने वाले थे। कमलाप्रसाद गुंडों द्वारा सभा में उपद्रव कराना चाहता था। प्रेमा को भाई के इस कृत्य की सूचना मिल गई। प्रेमा भी सभाभवन के अंदर गई। जब सभा में उपद्रव आरंभ हुआ, तब वह सभामंच पर जा पहुंची। उसने अमृतराय के पक्ष में जोरदार भाषण दिया। लोगों का मन फिर से अमृतराय की ओर झुका, और जब प्रेमा ने वनिताश्रम के लिए चंदे की अपील की, तो गुंडों ने भी दान दिया। अमृतराय ने जब यह देखा कि प्रेमा ने उनके कारण अपने को एक ऐसी अजीब परिस्थिति में डाल लिया तो उन्हें इस बात का पश्चात्ताप हुआ कि वे भाषण देने ही क्यों आये।

इधर कमलाप्रसाद और सुमित्रा का वैमनस्य बढ़ता ही गया। एक दिन पूर्णा की उपस्थिति में ही दंपति में कलह हो गई। कमला के जाने के पश्चात् पूर्णा ने सुमित्रा को समझाने की चेष्टा की। पर सुमित्रा उससे भी उलझ बैठी, और उसने उसे जली-कटी सुना दी। लाचार होकर पूर्णा ने उस घर को छोड़ने का इरादा किया। अपने इरादे के अनुसार वह रात में कमला के पास विदा मांगने गई। पर कमला था परले सिरे का बदमाश। उसने पूर्णा से कहा—तो पहले मुझे थोड़ा-सा संखिया देती जाओ।

कमला की इस बात पर पूर्णा ने तिरस्कार का भाव प्रदर्शित किया। कमला ने तब उसे खींच लिया, और कमरे का द्वार बंद कर दिया। इसके बाद वह पूर्णा के प्रति अपना प्रेम प्रदर्शित करने लगा। उसने पूर्णा के इन्कार करने पर आत्महत्या की

धमकी दी। उसने उसे बड़े-बड़े प्रलोभन दिए, पर पूर्णा ने उसे ठुकरा दिया।

इसके बाद एक दिन सुमित्रा ने पूर्णा से कह दिया कि उस दिन रात को उसने छिपे-छिपे सब कुछ देख लिया है। उसने पूर्णा से यह भी कहा कि वह कमला से विवाह कर ले। इस पर पूर्णा रोने लगी, और उसने सुमित्रा से क्षमा याचना की।

इसी समय एकाएक कमला हाथ में एक पत्र लेकर आया, और उसने कहा कि प्रेमा ने उसे बुलाया है, फिर आग्रहपूर्वक उसे तांगे में बिठाला। तांगा कमला स्वयं चला रहा था। वह उसे अपरिचित मार्गों से नगर के बाहर बगीचे के एक बंगले में ले गया। यहां कमला दुष्टता न कर सका। पूर्णा का नारी-तेज जाग्रत हो गया। उसने और कुछ न देखकर कुर्सी उठाई, और कमला पर उसी से प्रहार किया। कमला इसके लिए तैयार न था। वह आहत होकर मूर्छित हो गया। पूर्णा यह देखकर वहां से निकल कर गंगा में डूबने को चली। उसने एक वृद्ध से रास्ता पूछा। उस वृद्ध ने सब हाल जानकर उसे अमृतराय के वनिताश्रम में भेज दिया।

इधर कमला ने बात बनाने की बहुत चेष्टा की, पर उसके दुराचरण की खबर बिजली की तरह सारे शहर में फैल गई। कमला प्रसाद से दाननाथ की गहरी दोस्ती थी। अतएव वह भी लज्जा से गड़ गए। जनता उनसे बहुत नाराज हो गई, और उनके कालेज के विद्यार्थी तक उन्हें शर्मिन्दा करने लगे। विवश होकर उन्होंने तीन महीने की छुट्टी ले ली। वे दिन-ब-दिन इस निंदा की वजह से घुलने लगे।

उधर कमलाप्रसाद अपने किये की सजा पाकर राह पर आ गए। सुमित्रा और कमलाप्रसाद में फिर से दांपत्य प्रेम बढ़

वनिताश्रम खोलने का निश्चय किया। वे इस कार्य के लिये चंदा जमा करने लगे।

इधर पूर्णा के आगमन से कमला और सुमित्रा के जीवन की खाई और भी गहरी हो गई। यों तो कमला में अनेकों दुर्गुण थे, पर सभी की धारणा थी कि वह सदाचारी है। पर पूर्णा पर वह मोहित हो गया। संभव है कि उसे सरल, दीन, और आश्रयहीन पाकर कमला के हृदय में कुप्रवृत्तियों का उदय हुआ हो। पूर्णा से तो वह एक प्रकार से निश्चिन्त था ही, पर सुमित्रा उसकी कार्य-सिद्धि में दीवार बनकर खड़ी थी। वह कभी भी पूर्णा को अकेला नहीं छोड़ती थी। कमला ने यह देखकर सुमित्रा से कहा कि पूर्णा उसके साथ रहने के उपयुक्त नहीं है। पर उस दिन से पूर्णा के साथ सुमित्रा अधिक-से-अधिक रहने लगी।

कमला के मन में पूर्णा को पाने की व्याकुलता बढ़ती जा रही थी। एक दिन वह बाजार से बंगाली मिठाई लाया। उसने सुमित्रा से कहा कि इसमें वह पूर्णा को भी हिस्सा दे। पर सुमित्रा ने ऐसा नहीं किया। इसी प्रकार एक दिन कमला दो साड़ियां लाया। वह एकाएक वहां पहुंचा जहां दोनों साथ बैठी थीं। उसने सुमित्रा से एक साड़ी पूर्णा को देने के लिए कहा। पर सुमित्रा ने ऐसा नहीं किया। केवल यही नहीं उसने कमला को भला-बुरा भी कहा। पूर्णा को सुमित्रा का यह व्यवहार पसन्द नहीं आया।

पूर्णा को ऐसा प्रतीत हुआ कि पति-पत्नी दोनों अलग-अलग कारणों से नाराज हो गये हैं। वह मौका ढूंढने लगी कि कमला-प्रसाद से बातचीत करके वह अपनी हालत साफ कर दे। दस-बारह दिन के बाद आधी रात के समय पूर्णा ने सुमित्रा के कमरे के किवाड़ खुलने की आवाज़ सुनी। उसने देखा कि सुमित्रा

सशंक दृष्टि से चारों ओर ताकती हुई पति के कमरे की तरफ जा रही है। पर कमला की आवाज़ सुनकर वह उल्टे पैरों लौट आई, और अपने कमरे में सो गई।

इसी समय पूर्णा को अपने सुखी दाम्पत्य-जीवन की एक घटना याद आ गई। वह कमला को यह समझाने के लिए कमरे के भीतर घुस आई थी कि भाभी अर्थात् सुमित्रा को बुखार आगया है, इसलिए वह उसे देख आए। पूर्णा उसे समझाने लगी। कमला ने उसे हाथ पकड़ कर अंदर खींच लिया, और द्वार बन्द कर दिया। वह उसके स्पर्श से कांप उठी। अतएव कमला ने उसे छोड़ दिया। इसके बाद कमला ने अनुनय, विनय के पश्चात् प्रेम-निवेदन किया, पर पूर्णा ने उसे मना कर दिया। इसके उपरांत बहुत कहने-सुनने पर वह कुर्सी पर बैठ गई, और उसने कमला के बहुत अनुरोध करने पर उसके द्वारा दी गई साड़ी पहनी। फिर वह अपने कमरे में चली गई। कमला उसके मुख पर होनेवाले भावपरिवर्तनों पर विचार करता रहा। पहले रोष, फिर हास और फिर विराग।

इधर प्रेमा विवाह के उपरांत अपने पति दाननाथ को प्रसन्न करने का जी-जान से प्रयत्न करने लगी। पर दाननाथ के हृदय में अब भी संदेह था कि प्रेमा अमृतराय को प्रेम करती है। इसी संदेह की वजह से वे अमृतराय से द्वेष करने लगे। वे प्रेमा से अमृतराय की निंदा करने लगे। प्रेमा को यह बुरा लगा। इससे दाननाथ की द्वेषाग्नि और बढ़ी। अमृतराय सुधारक थे। इसलिए दाननाथ कट्टर सनातनी हो गए। उन्होंने सनातन धर्म की कट्टरता का समर्थन करते हुए एक भाषण दिया। उन्होंने इस बात की भी चेष्टा की कि अमृतराय की वनिताश्रमवाली योजना विफल हो जाय। अमृतराय दाननाथ के भाषण के अगले दिन

दाननाथ एक साधारण व्यक्ति

दाननाथ का चरित्र एक साधारण व्यक्ति का चरित्र है। उसमें ऊँचाई-निचाई सभी कुछ है। उसका चरित्र एक हद तक पतित होने पर भी स्वाभाविक है। वह देवता नहीं है।

प्रेमा और विरजन

प्रेमा का चरित्र 'वरदान' की विरजन से इतना मिलता है कि ऐसा मालूम होता है कि दोनों चरित्र एक ही हैं। वही दूसरे से प्रेम करते हुए भी अपने पति के साथ संपूर्ण रूप से निभाना. वही कर्तव्य-परायणता और अन्त तक कर्तव्य निभाना।

पर एक मामले में भिन्न

पर एक मामले में वह विरजन से बढ़ जाती है। वह यह है कि पति को संपूर्ण रूप से पति मानती हुई भी, और बाद को उसकी आज्ञाकारिणी रहती हुई भी वह भरी सभा में उठ खड़ी होकर उसका इस कारण विरोध करती है कि वह गलत मार्ग पर है, और खामख्वाह अमृतराय को गुंडों से पिटाना चाहता है।

अबला असहाया स्त्री की समस्या

यद्यपि मैंने बताया कि 'प्रतिज्ञा' की कहानी प्रेममूलक है, पर इसमें पूर्णा के जीवन में हम एक सामाजिक समस्या को मूर्त रूप में देख सकते हैं। वह सामाजिक समस्या यह है कि एक अबला स्त्री जिसका आर्थिक रूप से कोई सहारा नहीं है, वह बहुत बड़े खतरे में रहती है। इसी आर्थिक असहायता के कारण ही उसे कमलाप्रसाद के घर में आना पड़ता है, जिससे तमाम जटिलतायें उत्पन्न हो जाती हैं। कई लोगों के जीवनों पर उसका

सेवा सदन

'सेवासदन' ही प्रेमचंद का प्रथम महत्वपूर्ण उपन्यास है। इस उपन्यास ने हिंदी के कथाजगत में क्रांति कर दी, और समस्त हिंदी संसार का ध्यान उसकी ओर आकर्षित हुआ। यहां हम 'सेवासदन' का कथासार देंगे।

कृष्णचंद्र एक बहुत ही ईमानदार और सज्जन पुलिस-दारोगा थे। उन्होंने कभी रिश्वत आदि नहीं ली। पर इस भलाई का परिणाम यह दिखलाया गया है कि वे पच्चीस वर्ष तक नौकरी करने के उपरान्त भी अपनी विवाह योग्य कन्या सुमन के विवाह के लिये दहेज न जुटा सके। विवश होकर उन्होंने रिश्वत लेने का निश्चय किया।

उन्हीं के हल्के में एक जागीरदार महंत रामदास थे जिनका सारा कारोबार श्री बांके विहारी जी के नाम पर चला करता था। महंतजी जमींदार तो थे ही, साथ में वे साहूकारी भी करते थे और कस कर सूद लेते थे। श्री बांकेविहारीजी की रकम दबाने का साहस किसी को न था, और अपनी रकम के लिये कोई दूसरा आदमी उनसे ज्यादा कड़ाई नहीं कर सकता था। श्री बांकेविहारी जी को रुष्ट करके इस इलाके में रहना कठिन था, महंत रामदास के यहां दस-बीस मोटे-ताजे साधु स्थायी रूप से रहते थे। वह अखाड़े में डंड पेलते, भैंस का ताजा दूध पीते, संध्या को दूधिया भंग छानते, और गांजे-चरस की चिलम तो कभी ठण्डी न हो पाती थी। महंतजी

का अधिकारियों में भी खूब मान था। श्री बांकेबिहारी जी उन्हें खूब मोतीचूर के लड्डू और मोहनभोग खिलाते थे, उनके प्रसाद से कौन इन्कार कर सकता था।

दारोगा जी के भाग्य से इसी समय महंत के साधुओं ने चेतू नामक एक आसामी के पीटते-पीटते प्राण ले लिये। इसका कारण यह था कि वह यज्ञ के लिये लगाया हुआ चंदा न दे सका था। इस हत्याकांड की दारोगाजी के पास रिपोर्ट आई, परन्तु उन्होंने रिश्वत लेकर मामला दबा दिया। दारोगाजी इस कला में नौसिखिये थे। अपने मातहत कर्मचारियों को उन्होंने घूस में से कोई हिस्सा न दिया। फलस्वरूप यह बात उच्च पदाधिकारियों के कानों में पहुंची, और दारोगाजी को पांच साल के लिये कारावास का दंड मिला। महंतजी और उनके दो चेलों को भी क्रमशः सात साल और काले पानी का दंड मिला।

कृष्णचंद्र के जेल जाने के पश्चात उनकी पत्नी गंगाजली अपनी दोनों पुत्रियों सुमन और शांता को लेकर अपने भाई उमानाथ के पास चली गई। जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि सुमन की अवस्था विवाह योग्य थी। उसका विवाह हो गया। पर धनाभाव के कारण उसका विवाह अच्छी जगह न हो सका। उसकी शादी पन्द्रह रुपया वेतन पानेवाले गजाधर प्रसाद नामक दुआह से हुई।

सुमन को कभी भी गृह-कार्य की शिक्षा नहीं मिली थी, पर पतिगृह में उसे ही सारा गृहकार्य रसोई, चौका-बर्तन, झाड़ना-बुहारना आदि करना पड़ता था। उसमें चटोरपन था, और वह खर्च भी बहुत करती थी। इसके ठीक विपरीत अपनी सीमित आय के कारण गजाधर कृपणता के साथ कार्य करते थे। शायद

सुमन के घर के सामने भोली नामक एक वेश्या रहती थी। सुमन इस वेश्या की तड़क-भड़क के बावजूद भी अपने को उससे ऊंची समझती थी। पर एक दिन उसने भोली के यहां भले आदमियों का जमाव देखा। अपने पति गजाधर को भी उसने उस जमाव में पाया।

पति के आने पर उसने वहां एकत्रित लोगों के विषय में पूछा। उसे पता चला कि वे सब व्यक्ति संभ्रांत थे। फिर उसने गजाधर से प्रश्न किया—"तुम्हें तो वहां जाते हुए संकोच हुआ होगा?"

गजाधर—"जब इतने भले-मानुस बैठे हुए थे, तो मुझे क्यों संकोच होने लगा। वह सेठजी भी आये थे जिनके यहां मैं शाम को काम करने जाया करता हूं।"

इस घटना ने मानो सुमन के अन्तःस्थल का एक पर्दा खोल दिया। वह समझ गई कि वेश्याओं के प्रति समाज की घृणा खोखली और बनावटी है। यहीं से उसके अन्दर असंतोष बढ़ा। गजाधर के साथ भी वह रूखा व्यवहार करने लगी। एक दिन गजाधर ने सुमन को भोली के साथ बात करते हुए देख लिया, बस उसका पारा आसमान में चढ़ गया। इस पर सुमन ने पूछा कि भोली के घर तो बड़े-बड़े आदमी जाते हैं, उसके जाने में फिर क्या नुकसान है।

गजाधर ने इस पर सुमन से कहा कि भोली के घर जाना कुलवधुओं के लिये शर्म की बात है। उन बड़े आदमियों के विषय में भी उसने बताया और सुमन से कहा कि धन से ही आदमी बड़ा नहीं होता। उस दिन से सुमन बहुत ही धर्मनिष्ठ हो गई, और गंगास्नान, रामायणपाठ आदि धार्मिक कृत्य

प्रसन्नता में मित्रों के अनुरोध पर होली के अवसर पर उनके यहां भोली का मुजरा हुआ। पद्मसिंह के यहां भोली की बहुत आवभगत हुई। सुमन के हृदय में पुनः असन्तोष के बादल मंडराने लगे।

उस दिन वह काफी रात को अपने घर पहुंची। गजाधर सुमन के इस कृत्य से बहुत नाराज था। उसने सुमन को उसके आभूषणों के बक्स के साथ बाहर निकाल दिया। गृह निर्वासिता सुमन ने जाकर पद्मसिंह के यहां आश्रय लिया। गजाधर को ज्योंही सुमन के आश्रय की बात का पता लगा, वह पद्मसिंह के चरित्र के विषय में जगह-जगह मिथ्या प्रचार करने लगा। इससे उनकी बड़ी बदनामी हुई। जब वकील साहब को यह विदित हुआ तो उन्होंने सुमन को नौकर से कहलवाकर घर से बाहर निकाल दिया। पतित्यक्ता सुमन को आश्रय न मिल सका। विवश होकर बेचारी वेश्या भोली के जाल में फंस गई। सुमन को वह वेश्या-वृत्ति करने के लिये तैयार करने लगी, पर सुमन एकाएक इस घृणित पेशे को करने के लिये तैयार नहीं हुई। वह सिलाई करके अपना उदर-पोषण करना चाहती थी। पर अन्त में उसे वेश्या ही होना पड़ा।

पद्मसिंह का भतीजा सदनसिंह इसी समय पद्मसिंह के पास आया। पद्मसिंह के बड़े भाई मदनसिंह ने ही पद्मसिंह को पढ़ा-लिखाकर वकील बनाया था, इसलिये वहां उसका विशेष आदर-सत्कार हुआ। उसकी पढ़ाई-लिखाई की व्यवस्था की गई, और वायुसेवन के लिये एक घोड़ा खरीद दिया। सदन को वेश्याओं के यहां जाने की बुरी आदत पड़ गई। एक दिन वह सुमन के यहां जा पहुंचा। सुमन सदन की तरफ आकर्षित हुई और उसे चाहने लगी। पर सुमन को पता लग गया कि सदन पद्मसिंह का भतीजा

है, इसलिये मामला वहीं रुक सा गया। सदन इस बात को नहीं समझ सका। उसने चाचा से छिपकर घर से पच्चीस रुपये मंगाये, और सुमन को एक साड़ी उपहार में दी। इससे भी जब सुमन उससे खुश नहीं हुई, तो उसने अपनी चाची सुभद्रा का कंगन चुराकर सुमन को भेंट में दिया। सुमन ने वह कंगन वकील साहब को दे दिया। जब सदन ने चाची के हाथ में फिर से वही पुराना कंगन देखा, तो उसके होश ठिकाने आ गये। उसकी हिम्मत दुवारा सुमन के पास जाने की नहीं हुई।

पद्मसिंह के मित्र विट्ठलदास शहर के एक उत्साही समाज सुधारक थे। वे सदा सामाजिक कार्यों में लगे रहते थे। वेश्याओं के मुजरा आदि के तो वे कट्टर विरोधी थे। पद्मसिंह ने जब सदस्यता की प्रसन्नता में भोली का मुजरा कराया, तो वे उनसे बहुत नाराज हो गये। इसके बाद जब सुमन को उन्होंने आश्रय दिया, तब गजाधर ने जाकर उनसे कहा कि पद्मसिंह ने उसकी स्त्री को अपने घर में रख लिया है। विट्ठलदास ने इसे सच समझ लिया, और वे वकील साहब की चारों ओर खिल्ली उड़ाने लगे। जब सुमन वेश्या हो गई, तब पद्मसिंह ने पत्र द्वारा उन्हें इस घटना की सूचना दी। यह पत्र पाकर विट्ठलदास की तंद्रा दूर हुई। वे फौरन सुमन के पास जाकर उसका उद्धार करने का प्रयास करने लगे। उन्होंने जाकर उसको बहुत ऊंच-नीच समझाया, पर सुमन ने उन्हें मुंहतोड़ जवाब दिया। उसने विट्ठलदास से कहा—'मैंने प्रतिज्ञा कर ली है कि अपने सत्य की रक्षा करूंगी, और ईश्वर चाहेंगे तो मैं अपने प्रण को पूरा करूंगी गाऊंगी, नाचूंगी, पर अपने को पथभ्रष्ट न होने दूंगी।' उसने यह भी

कहा कि यदि उसके निर्वाह के लिये ५०) रु० की व्यवस्था हो जाय तो वह इस नीच पेशे को छोड़ देगा। विट्ठलदास ने यह सुनकर बहुत दौड़धूप की, लेकिन बेचारे सफल न हो सके।

पर उन्होंने सुमन को समझाना जारी रक्खा, और एक दिन वे सुमन को इस पेशे से उबारने में समर्थ हुए। जिस दिन सुमन दालमंडी त्याग रही थी, उस दिन उसने अपने प्रेमियों की बड़ी दुर्दशा की। उसने म्युनिसिपल मेंबर अबुलवफा की डाढ़ी में आग लगा दी, सेठ चिम्मनलाल को तीन टांग की कुर्सी पर बैठाकर तंग किया, और दीनानाथ पर बारनिश पोत दिया। विट्ठलदास ने उसे विधवाश्रम में रखवा दिया।

सदन जब अपने घर पहुंचा तो उसके पिता मदनसिंह ने उसके विवाह की पूरी-पूरी तैयारियां कर ली थीं। उसका विवाह सुमन की छोटी बहिन शांता के साथ निश्चित हुआ था। इस समय कृष्णचन्द्र जेल से छूट गये थे, और अजीब दशा में अपने दिन गुजार रहे थे। उनका व्यवहार बिलकुल पागलों जैसा था। वे कृषक स्त्रियों से मजाक करते, और नीचों के साथ बैठकर चरस के दम लगाया करते। उनके साले उमानाथ ने कृष्णचन्द्र का यह रुख देखकर जब उन्हें मना किया, तब वे उमानाथ से ही झगड़ पड़े और उससे उल्टी-सीधी बातें कह दीं। कृष्णचन्द्र तो कुछ देर पश्चात् शांत हो गये पर उमानाथ के हृदय में एक रेखा खिंच गई।

यहां नगर की म्युनिसिपेलिटी में प्रस्ताव उपस्थित होने वाला था कि वेश्याओं को शहर से बाहर रखा जाय। इस प्रश्न को साम्प्रदायिक तूल दे दिया गया। पहले मुसलमान म्युनिसि-पल कमिश्नरों की एक अलग सभा हुई जिसमें उन्होंने वेश्याओं

के ऊपर होने वाले प्रहार को इस्लाम के ऊपर प्रहार बताया, और अजीब-अजीब तर्क उपस्थित किये। मुसलमानों का अनुकरण हिन्दुओं ने भी किया, और उन्होंने आर्थिक दृष्टि को ध्यान में रख कर इस सुधारपूर्ण प्रस्ताव का विरोध किया। परन्तु अन्त को प्रस्ताव हिन्दू और मुसलमान प्रगतिशील सदस्यों के बल पर पास होकर ही रहा।

सदन की बरात निश्चित समय पर शांता के यहां गई, पर न मालूम कैसे विवाह होने के पहले मदनसिंह को सुमन की वेश्यावृत्ति के विषय में मालूम हो गया, और मदनसिंह के आदेशानुसार बरात लौट गई। कृष्णचन्द्र को इसी दौरान में सुमन की वेश्यावृत्ति के विषय में मालूम हुआ। उनके मस्तिष्क में तरह-तरह के विचार उदित हुए, पर अन्त में उन्होंने नदी में डूब कर आत्महत्या कर ली।

विवाह न होने पर भी शांता हृदय में सदन को अपना पति मानने लगी। उसने सदन के चाचा पद्मसिंह को पत्र लिखा कि एक सप्ताह तक यदि उसकी सुधि न ली गई, तो वह आत्महत्या कर लेगी। विट्ठलदास के मतानुसार पद्मसिंह ने उसे सुमन के पास आश्रम में रखवा दिया। इधर म्युनिसिपलिटी के वेश्या संबंधी प्रस्ताव के संबंध में अखबारों ने तूल पकड़ा। विरोधी पक्ष ने पद्मसिंह को नीचा दिखाने के उद्देश्य से सुमन के विधवाश्रम में प्रवेश की बात प्रकाशित कर दी। इसलिये विवश होकर शांता को साथ लेकर सुमन ने आश्रम छोड़ दिया।

सदन ने पिता से अलग होकर नाव से नदी पार कराने का धंधा कर लिया, और थोड़े ही समय में वह मल्लाहों का नेता बन गया। जब सुमन और शांता नदी पार करने लगीं तो सदन ने उन्हें अपने पास रोक लिया, और शांता के साथ

विवाह कर लिया। मदनसिंह को उसी दिन यह समाचार पद्मसिंह से विदित हो गया, और उन्होंने सदन को त्याग दिया। पर सदन ने इसकी परवाह नहीं की। हां, शांता और सदन दोनों ही सुमन के प्रति उदासीन हो गये। जब सुमन की वेश्यावृत्ति के कारण सदन का साथी मल्लाहों ने बहिष्कार कर दिया, तथा सदन के पुत्रजन्म पर मदनसिंह और उनकी पत्नी भामा उसके पास आईं; तो सुमन को शांता के संकेत पर सदन की कुटी छोड़नी पड़ी। जब वह विवशता की दशा में जा रही थी, तभी उसकी भेंट स्वामी गजानन्द के रूप में गजाधर-प्रसाद से हुई। उन्हीं की प्रेरणा से उसने सेवाश्रम का कार्य-भार स्वीकार किया।

सेवासदन पर विचार

प्रेम कहानी नहीं

अब तक जिन उपन्यासों की आलोचना की गई है, उनके मुकाबले में 'सेवासदन' की विशेषता यह है कि यह कोई प्रेम कहानी नहीं है। इसमें समाज की एक बड़ी भारी समस्या याने वेश्या समस्या की ओर लेखक पाठकों की दृष्टि को आकर्षित करते हैं। वह निश्चित रूप से एक सामाजिक उपन्यास है।

सुमन चरित्र की परिणति

प्रेमचंद ने इसके सुमन चरित्र में यह स्पष्ट करके दिखलाया है कि वेश्यायें कोई नरक से नहीं आतीं, बल्कि वे भी मौलिक रूप से हमारे समाज की कुलवधुयें तथा कन्यायें हैं, पर परिस्थितियों के चपेट से वेश्या बनने पर मजबूर होती हैं। सुमन के मन पर जिस-जिस तरह से जो-जो असर पड़ता है, और वह धीरे-धीरे वेश्या बनने पर मजबूर हो जाती हैं, यह इस उपन्यास में दिखाने की चेष्टा की गई है।

एक बुरी सामाजिक प्रथा

सचमुच वेश्याओं की इतनी कद्र हो, बड़े बड़े संभ्रांत तथा धार्मिक व्यक्ति उनके सामने बैठने में अपना अहोभाग्य समझें, इन सब बातों का सुमन पर जिस प्रकार असर पड़ा, वह बहुत कुछ स्वाभाविक है। इससे संभ्रांत तथा धार्मिक लोगों की पोल

भी खोली गई है। स्मरण रहे कि यह किसी एक व्यक्ति की पोल नहीं है, बल्कि सारी पद्धति की पोल है। मंदिर के अंदर औरतों का जो भजन हुआ है, वह किसी एक व्यक्ति की शरारत या दुश्चरित्रता के कारण नहीं, बल्कि सामूहिक रूप से स्वीकृत पुरानी पद्धति के अनुसार हुआ है। इस दृष्टि से देखने पर प्रेमचंद ने समाज के एक बहुत बड़े घाव को खोलकर रख दिया है।

पुलिस विभाग पर चोट

इस पुस्तक का प्रारंभ पुलिस विभाग के भ्रष्टाचार के वर्णन से होता है। यह विभाग इतना भ्रष्ट दिखलाया गया है कि उसमें कोई ईमानदार रह ही नहीं सकता। दूसरी तरफ यह दिखलाया गया है कि यदि कोई ईमानदार रह भी जाय, तो उसका इतना बुरा हाल होता है कि सालों नौकरी करने के बाद भी वह इस काबिल नहीं होता कि वह अपनी विवाह योग्या कन्या का विवाह कर सके।

दहेज

पर इसकी आड़ में ही दहेज प्रथा की बुराई की ओर भी संकेत किया गया है। यदि दहेज की बुरी प्रथा न होती, तो कृष्णचन्द्र को बुढ़ौती में घूस लेने के लिये मजबूर न होना पड़ता, और न इसके खुल जाने पर जेल की ही हवा खानी पड़ती। कृष्णचंद्र जेल से छूटकर विकृत मस्तिष्क हो जाता है, और अंत में आत्म-हत्या करके अपने जीवन को समाप्त करता है।

महंतों पर मन्तव्य

इस पुस्तक में महंतों के ऊपर भी भयंकर चोट की गई है, और इस बात को खोलकर रख दिया गया है कि वे श्री बांकेबिहारी को सामने रखकर कितने-कितने दुराचार करते हैं। यहां तक

कि एक आदमी को दिनदहाड़े जान से मार डालते हैं। इस प्रकार समाज की एक अत्यंत सड़ी-गली पद्धति याने महंत पद्धति की तरफ भी जनता का ध्यान आकर्षित किया गया है।

समाज सुधारकों की पोल

इस पुस्तक में समाज सुधारकों की भी पोल खोली गई है। समाजसुधार की बड़ी-बड़ी बातें करना तो आम बात है, पर जब काम पड़ता है तब लोग कैसे बगलें झांकने लगते हैं, इसका अच्छा दिग्दर्शन है। सुमन कहती है कि यदि उसे ५०) रु० माहवार मिल जायं तो वह वेश्यावृत्ति छोड़ सकती है। विट्ठलदास इसके लिये दौड़धूप करते हैं, पर अंत तक वे सफल नहीं हो पाते।

पद्मसिंह

पद्मसिंह का चरित्र एक goody goody gentleman याने एक साधारण भलमानुस की तरह है। वह सुमन को पार्क के अंदर विपत्ति में पाता है, तो उसे उसके घर पहुंचा देता है। जब गजाधर सुमन को निकाल देता है, तो वह उसे आश्रय देता है। पर ज्योंही देखता है कि इससे बदनामी हो रही है, त्योंही इस बात पर जरा भी न विचार कर कि सुमन का क्या होगा, वह उसे घर से निकलवा देता है। पर इसमें पद्मसिंह का कहां तक दोष है, और कहां तक समाज पद्धति का दोष है यह विचार्य है क्योंकि बाद को शांता भी एक परिस्थिति में उसे अपनी कुटी से चले जाने को कहती है।

गजाधर

गजाधर एक साधारण व्यक्ति है। उसका दोष इतना ही है कि उसने एक ऐसी लड़की से शादी की, जिसे यह समझकर पाला गया था कि वह किसी अच्छे घर में ब्याही जायगी। पर घटना-

चक्र के कारण वह उससे ब्याही जाती है, और इसीलिए दांपत्य जीवन निभ नहीं पाता। यदि गजाधर को कोई उसके लायक स्त्री मिल जाती, तो इसमें संदेह नहीं कि वह अच्छी तरह निभा ले जाता। वह दिल से बुरा आदमी नहीं है, और अंत तक 'सेवा सदन' खोलकर उसमें सुमन को ले लेता है।

शांता का गौण चरित्र

शांता का चरित्र एक गौण चरित्र है। उसे भी जो आफतें झेलनी पड़ती हैं, वह सामाजिक पद्धति के कारण झेलनी पड़ती हैं।

निर्मला

बाबू उदयभानुलाल अपनी कन्या निर्मला की शादी में हैसियत से अधिक खर्च करने पर उतारू थे, इस पर उनकी पत्नी कल्याणी में और उनमें काफी चख-चख हो गई। यहां तक कि कल्याणी घर छोड़ने पर तैयार हो गई, पर बच्चों का मुंह ताक कर ऐसा न कर सकी। उधर उदयभानुलाल लपके हुए गंगा की ओर चले कि वहां जाकर कपड़े छोड़ दूंगा, और घर नहीं लौटूंगा, जिससे कि यह भ्रम हो कि वह डूब गये, और इस प्रकार कल्याणी को सजा मिले। वे तो स्वांग रचना चाहते थे पर हुआ यह कि एक बदमाश को उन्होंने तीन साल पहले सजा दी थी, उसने मौका पाकर उनका काम तमाम कर दिया।

भालचन्द्र के पुत्र से निर्मला की शादी तय हो चुकी थी। पर उदयभानुलाल के मर जाने से भालचन्द्र ने यह शादी तोड़ दी, क्योंकि उन्हें अन्य स्थान से अधिक दहेज की उम्मीद थी। अंत तक निर्मला का विवाह एक बाल-बच्चेदार दुआह मुंशी तोताराम से हुआ, जो अच्छे वकील थे। मुंशी तोताराम के घर में उनकी बहिन रुक्मिणी भी थी। वह निर्मला को नापसन्द करती थी। इस कारण घर में अशांति रहने लगी।

मुंशीजी ने निर्मला की तरफदारी शुरू की। निर्मला बच्चों से खूब हिलमिल गई, और उनसे प्यार करने लगी।

मुंशीजी चाहते थे कि निर्मला उनसे प्रेम करे, पर निर्मला बच्चों पर अधिक प्रेम रखती थी। उन्होंने दोस्तों से सलाह ली

तो दोस्तों ने कहा कि ज़रा ढंग के चुस्त कपड़े पहनो, अपनी वहादुरी की वातें सुनाओ तव काम वनेगा । मुंशीजी ने ऐसा ही किया । वे जव घर आते तो कोई न कोई वहादुरी की चर्चा सुनाते । एक दिन वह यह सुना रहे थे कि उन्होंने आज एक छड़ी से तीन वदमाशों को मार भगाया, इतने में रुक्मिणी ने आकर खवर दी कि उनके कमरे में एक सांप निकला है । उस पर मुंशीजी के मुंह से फेन आ गया और घवड़ाये, पर मन के भाव छिपाकर वोले--सांप यहां कहां से आ सकता है, यह तो कोई रस्सी होगी ।

जव वहुत कहा गया कि सांप है तो वे निकले, पर उस कमरे की ओर न जाकर घर से वाहर चले गए । उनके पुत्र मन्शाराम ने जव सांप मार लिया तो वे घर लौटे और निर्मला से वोले—मैं जव तक जाऊं-जाऊं, मन्शाराम ने सांप मार डाला । मैंने ऐसे कितने ही सांप मार डाले । कितनों को मुट्ठी से मसल डाला ।

इस प्रकार सारी वातें करने पर भी निर्मला उन पर नहीं रीझी, तव मुंशीजी घवड़ाये कि नुस्ख़ा व्यर्थ हुआ जा रहा है । निर्मला घर के और सव की तरह अपने सौतेले पुत्र मन्शाराम की अधिक देखभाल करती थी । एक दिन तोताराम ने देखा कि वह मंशाराम की यथेष्ट आवभगत करती है, वस इस पर वह मंशाराम से चिढ़ा रहने लगा, और थोड़े दिनों में उसे वोर्डिङ्ग में भेजने की वात सोचने लगा, पर निर्मला ने यह कह कर विरोध किया कि यह मुझे अंग्रेजी पढ़ाता है । पहले वकील साहव को अंग्रेजी पढ़ने-पढ़ाने का कुछ भी पता नहीं था, पर अव जो मालूम हुआ तो वे वहुत पछताये कि पुत्र को पहले ही क्यों न वोर्डिङ्ग में भेज दिया । उन्होंने उसी दिन मन्शाराम को वोर्डिङ्ग में भेज दिया ।

कुछ दिन बोर्डिङ्ग में रहकर मंशाराम बीमार पड़ा। हेड-मास्टर ने लिख भेजा कि यहां इसकी तीमारदारी नहीं हो सकती, इसे आप घर ले जायं। कहने-सुनने पर भी मन्शाराम घर आने को तैयार नहीं हुआ। मुंशीजी भी ऊपर से कह रहे थे, इसलिये उसे अस्पताल पहुंचा दिया। वहां भी हालत नहीं सुधरी। मुंशीजी कई दिनों तक अस्पताल में ही डटे रहे। निर्मला सब कुछ सुनती थी, पर चुप थी। अब उसने सुना कि मन्शाराम की अंतिम दशा है, और खून देने ही से वह बच सकता है, तो वह अस्पताल पहुंच गई।

मुंशीजी ने देखा कि उसके आते ही जो मन्शाराम मुश्किल से हिलडुल पाता था, उठ बैठा। निर्मला खून देने के लिए तैयार थी ही, उसने साफ-साफ ऐसा कह दिया, पर मुंशीजी ने निर्मला को खून देने नहीं दिया और मन्शाराम मर गया।

मन्शाराम के अस्पताल में जो डाक्डर थे, उनके साथ मुंशीजी का परिचय बढ़ा और उनकी स्त्रियां भी एक दूसरे से मिलने लगीं। बात-बात में डाक्टर सिन्हा की स्त्री को यह ज्ञात हुआ कि जिन सज्जन से पहले निर्मला की शादी तय हुई थी, वे डाक्टर सिन्हा ही हैं। उसने डाक्टर सिन्हा को यह बतला दिया। बोली—यदि उसे मालूम हो जाय कि आप वह महापुरुष हैं तो वह शायद इस घर में कदम भी न रखे।

डाक्टर साहब को इस बात पर इतना पश्चात्ताप हुआ कि उन्होंने अपने छोटे भाई के साथ निर्मला की छोटी बहिन की शादी करवा दी। इसी बीच में निर्मला के एक कन्या हुई। मुन्शी जी ने जबसे शादी की थी, तबसे वे मुकदमे कम करते थे। धीरे-धीरे उनके मुवक्किल उनके हाथ से निकल गये, और उनका मकान नीलाम हो गया। घर में अन्य कारणों से भी अशांति बढ़ गई।

मंशाराम के छोटे भाई जियाराम को यह शक था कि उसके भाई के साथ अन्याय करके उसे मारा गया है। पिता के प्रति अब उसमें कोई श्रद्धा नहीं थी। एक बार हाथापाई की नौबत आई। डाक्टर सिन्हा के समझाने पर जियाराम कुछ ढंग पर आया, पर उसका मन तो बिगड़ चुका था। पर डाक्टर साहब का प्रभाव स्थायी नहीं हुआ, और एक दिन उसने निर्मला के आभूषणों का बकस चुराकर अपने शोहदे मित्रों को दे दिया। यद्यपि निर्मला ने उसको घर से निकलते हुए देख लिया था, पर उसने इस निन्दा के डर से कि लोग उसे यह कहेंगे कि सौत होने की वजह से दोष लगा रही है, किसी से यह बात नहीं कही।

मुन्शीजी ने चोरी की रिपोर्ट थाने में की। पुलिस को बद-माशों से पता लग गया कि जियाराम चोर है। तब मुन्शीजी ने बहुत मुश्किल से घूस देकर मामले को दबाया। जब जियाराम को यह पता लगा, तो उसने आत्महत्या कर ली।

घर की हालत और खराब हो गई। नौकरानी सौदा लाने में चोरी करती थी, इस कारण निर्मला छोटे लड़के सियाराम को सौदा लाने भेजती। इसे यह बात बहुत बुरी लगती, और खटपट रहती। अन्त में वह भी साधु बन कर निकल गया। मुन्शीजी लड़के को खोजने निकले। रात के बारह बजे निराश होकर घर लौटे तो निर्मला बोली—कहा भी नहीं, न जाने कब चल दिये, कुछ पता चला?

इस पर मुन्शीजी बहुत बिगड़े, और उसी को सारी आफतों के लिये जिम्मेदार कह कर गालियां देने लगे। अगले दिन वे लड़के की तलाश में निकल पड़े। एक महीना पूरा हो गया, पर पत्र नहीं आया। वह मिसेज़ सिन्हा के यहां पहुंची, पर वह उस

समय घर पर नहीं थी, डाक्टर साहब थे। डाक्टर साहब ने उससे प्रेम की बातें शुरू कीं, तो वह निकल गई। रास्ते में मिसेज़ सिन्हा से भेंट हुई, पर वह उससे भी कुछ न बोली। मिसेज़ सिन्हा बहुत गले पड़ीं, तो उसने यही कहा—मैं अभागिन न होती तो क्यों ये दिन देखती।

मिसेज़ सिन्हा समझ गईं, और क्रोध में भरी सिंहनी की भांति पति को बहुत बुरा-भला कहा। इस पर डाक्टर सिन्हा ने आत्महत्या कर ली।

निर्मला बीमार रहने लगी, और वह चल बसी। लाश बाहर निकाली गई। यही प्रश्न चल रहा था कि कौन दाह करेगा, इतने में मुन्शीजी लौट आये।

निर्मला पर विचार

दहेज तथा विधुर विवाह

यह उपन्यास भी दहेज प्रथा की बुराई को खोलकर सामने रख देता है। यदि निर्मला के विवाह में दहेज दिया जा सकता, तो उसका विवाह उसके बाप की उम्र के दुहाजू से नहीं होता। इस पुस्तक में यह भी प्रकट हो जाता है कि बड़े-बड़े लड़कों के पिता जब स्त्री के मर जाने पर शादी करते हैं, तो उनकी कैसी दुर्गति हो सकती है। मन्शाराम मर गया, जियाराम ने आत्महत्या कर ली, और सियाराम घर से भाग गया। और फिर भी मुन्शीजी जहां का तहां रहे कि एक छोटी-सी लड़की उनके गले पड़ी जो निर्मला से पैदा हुई थी।

इस उपन्यास का स्थान

इस उपन्यास को प्रेमचंद के उपन्यासों में सब से अधिक सुग्रथित तथा कार्यकारण संबंधयुक्त बताया गया है, यह कोई अत्युक्ति नहीं है। एक-एक कारण से एक-एक घटना पैदा होती है, पर आत्महत्याओं की अधिकता कुछ अधिक खटकती है।

निर्मला समाज की शिकार

निर्मला का चरित्र समाज की बलिवेदी पर चढ़ी हुई एक स्त्री का चरित्र है। उसका कुछ भी वश नहीं चलता। विवाह उसका ऐसे ही होता है। फिर उसका बूढ़ा पति उस पर यह संदेह करता है कि वह उसकी पहली पत्नी से उत्पन्न बेटे

मंशाराम को खराब कर रही है। वह मर जाता है। जियाराम चोर बनता है, इस प्रकार इसके फलस्वरूप एक तरफ तो उसके गहने गये, और दूसरा जियाराम अंत में आत्महत्या करता है। इन्हीं बातों के फलस्वरूप सियाराम घर से भागता है। डाक्टर सिन्हा के यहां भी उसे अजीब परिस्थिति का सामना होता है। इसके कारण डाक्टर सिन्हा आत्महत्या करते हैं।

तोताराम

मुंशी तोताराम का चरित्र एक ऐसे बाप तथा पति का चरित्र है, जो शादी करने को तो कर लेता है, पर न तो बीबी को ही सम्हाल पाता है, और न अपने पहले के घर को। यह टाइप भी समाज में कुछ कम नहीं है।

डाक्टर सिन्हा का अजीब चरित्र

डाक्टर सिन्हा का चरित्र एक साधारण व्यक्ति का चरित्र है, जो पहला मौका आते ही परस्त्री से प्रेम निवेदन करने से चूकता नहीं है। अवश्य इस क्षेत्र में वह शायद अपने मन को यह कहकर समझा लेता है कि निर्मला से उसकी शादी होने वाली थी। पर स्मरण रहे कि जब घर में इस बात पर उसकी मां और पिता में वादविवाद हुआ था कि निर्मला से शादी कराई जाय या नहीं तो उसने पिता का पक्ष लिया था। कुछ भी हो, किसी भी बहाने उसे निर्मला को अकेली पाकर प्रेम-निवेदन करने का अधिकार नहीं था।

प्रेमाश्रम

लखनपुर ज्ञानशंकर और उनके चाचा प्रभाशंकर की जमींदारी में है। ज्ञानशंकर का आधा हिस्सा है, पर संयुक्त परिवार चल रहा है। इस कारण प्रभाशंकर के अधिक सदस्य उसमें पलते हैं। इस पर भतीजा कुढ़ता रहता है, और वह यही चेष्टा करता रहता है कि चाचा के आठ प्राणियों पर जितना खर्च बैठता है, उसके तीन प्राणियों पर उतना ही बैठे। बेकार में दवा मंगाता है तथा कुत्ते पालता है।

इन्हीं दिनों ज्ञानशंकर के भूतपूर्व सहपाठी ज्वालासिंह इस इलाके के मजिस्ट्रेट होकर आते हैं। प्रभाशंकर का लड़का दयाशंकर भी इधर दारोगा है। उसने अंधेर मचा रखा है। ज्वालासिंह ने उसे गिरफ्तार कर लिया। इस पर चाचा ने आकर ज्ञानशंकर से कहा कि अपने मित्र से कहकर उसे छुड़ा लो, पर वह निष्पक्षता का ढोंग भर कर अलग रहा। असल में वह खुश हुआ था। ज्ञानशंकर की पत्नी विद्या ने भी जब कहा कि चाचा जी की बात मान जाओ, तो वे ज्वालासिंह के पास गये, पर सिफारिश के बजाय अपनी निष्पक्षता जाहिर करते रहे। ज्वालासिंह समझ गए कि और ही बात है, और उन्होंने अंत में कहा—मैं तो उसे निरपराध लिख चुका हूं। इस पर ज्ञानशंकर इतना सा मुंह लेकर लौट आये।

ज्ञानशंकर अपनी रिआया पर खूब जुल्म करता है, प्रभाशंकर रियायत करना चाहते हैं, पर वह इसके विरुद्ध है। ज्ञानशंकर चाहता है कि संपत्ति का बँटवारा हो जाय।

उसी इलाके का एक किसान है मनोहर। वह सहनशील प्रकृति का खातापीता किसान है, पर उसका लड़का बलरा नई पीढ़ी का उतावला नौजवान है। मनोहर ने रूसका भी नाम सुना है। केवल वह छोटे कर्मचारियों तथा कारिंदों को दोष देकर कहता है—यह सब मिली भगत है।

लश्करवालों के जुल्मों से परेशान होकर एक दिन मनोह सीधे ज्वालासिंह के पास पहुंचता है, और उनसे कहता है - हुजूर तो धर्म के आसन पर बैठे हुए हैं, और चपरासी लोग प्रजा को लूटते फिरते हैं। —ज्वालासिंह ने यह सब सुनक बेगार बंद करने का हुक्म दिया।

उधर ज्ञानशंकर और प्रभाशंकर में बटवारा हो गया विद्या इस बात पर खुश नहीं थी। पर विद्या की कौन सुनता था ज्ञानशंकर तो विद्या से इस बात पर लड़ा करता था कि उ अपने ससुराल की तरफ से कोई जायदाद नहीं मिली। विद्य इस पर उससे कहती कि मैं तुमसे कुछ मांगती थोड़े ही हूँ इतने में एक दिन तार आया कि विद्या का एकमात्र भ ई जात रहा। इस पर ज्ञानशंकर मन ही मन बहुत खुश हुआ, पर ऊपर से दुःख दिखाने लगा। वह सीधे एक बैरिस्टर के यहां यह जानने के लिए पहुंचा कि अब परिस्थिति क्या है। इसके बाद ज्ञानशंकर अपने ससुराल पहुंचा तो उसे अपनी विधवा साली गायत्री से परिचय हुआ। वह धीरे-धीरे वहां उससे रब्त-जब्त बढ़ाता रहा। उसने अपनी चालाकियों से गायत्री को अपनी तरफ खींच लिया। पर जब मामला अधिक दूर तक पहुंचा, तो गायत्री को अफसोस हुआ, और वह अपनी जमींदारी गोरखपुर में चली गई।

अब ज्ञानशंकर अपने को ससुर साहब की जायदाद का

मालिक समझता था। इसलिए उसने जब देखा कि ससुर साहब खर्च बढ़ा रहे हैं, तो उसे बड़ा दुःख हुआ। उसने यह भी सुना कि ससुर साहब फिर से शादी करनेवाले हैं। उससे वह बहुत घबड़ा गया, और असली बात की खबर लगाने के लिए ससुराल पहुंचा। वहां स्वयं ससुर साहब ने उनको बता दिया कि उनका कोई ऐसा इरादा नहीं है।

उधर जो बेगार आदि बंद होगई, तो लश्करियों में हाहाकार मच गया। एक कर्मचारी गौसखां ने ज्वालासिंह को ताव दिलाने के लिए कहा—आप हिंदुस्तानी हैं, इसीसे ये लोग बेगार देना नहीं चाहते। अंग्रेज अफसर आते हैं तो ये बड़े मजे में बेगार देते हैं और दिनभर हाथ बांधे खड़े रहते हैं।

इस पर ज्वालासिंह को ताव आ गया, और वे बदल गये। तय हुआ कि बलराज की तबियत ठीक कर दी जाय। तदनुसार शाम को दारोगाजी वहां पहुंचे और वह पकड़ लिया गया। उस पर 'मुदाखिलत बेजा' का अभियोग था। पर किसीने उसके विरुद्ध गवाही नहीं दी, इसलिए छोड़ना पड़ा। दारोगाजी ने निराश होकर गांव के मुख्य व्यक्तियों को बुलाकर डांटना शुरू किया, और धमकाने लगे कि बयान बदल दो। कुछ फौरन तैयार हो गए। पर इतने पर मुकदमा नहीं चल सकता था इसलिए बलराज से मुचलका ले लिया गया।

ज्ञानशंकर के एक बड़े भाई प्रेमशंकर थे जो बहुत दिनों से लापता थे। वे अमेरिका में थे, वे एकाएक लौट आए। बड़े भाई को देखकर ज्ञानशंकर पहले तो खुश हुए, पर जब सोचा कि आधा हिस्सा देना पड़ेगा तो बहुत दुखी हुए। पर क्या करते?

ज्ञानशंकर को बुलाकर उनके ससुर ने दो लेख लिखने के लिये कहा। उसने बहुत सफलतापूर्वक इन लेखों को लिखा।

इन लेखों में से एक गायत्री देवी के इलाके की सुव्यवस्था पर था। इस पर गायत्री देवी को रानी का खिताब मिल गया। गायत्री देवी पुरानी बात भूल गईं, और उन्होंने उन्हें अपने स्टेट का मैनेजर बना लिया।

प्रेमशंकर घर लौटे तो चाचाजी ने उनका स्वागत किया, पर उनकी पत्नी श्रद्धा तक उनसे इस कारण दिल खोलकर न मिली कि वह तथा गांव के अन्य लोग यह समझते थे कि विदेशयात्रा के कारण उनका धर्म नष्ट हो चुका है। एक स्थानीय अखबार में भी प्रेमशंकर के विरुद्ध निकलता रहता था कि खैर वे विदेश गये तो गये, पर प्रायश्चित्त क्यों नहीं कर लेते। प्रेमशंकर इस पर तैयार नहीं थे। पर ज्ञानशंकर इन खबरों को लाकर उन्हें पढ़कर इस कारण सुनाते थे कि वे फिर यहां से भाग खड़े हों। प्रेमशंकर दीवानखाने में रहते और गांववालों को कृषि तथा अन्य विषयों पर सलाह देते थे।

ज्ञानशंकर ने चाहा कि इलाके का इजाफा लगान हो। इस पर तहकीकात करने के लिये ज्वालासिंह पहुंचे तो आकस्मिक रूप से प्रेमशंकर से उनकी भेंट हो गई। प्रेमशंकर ने उनसे बातचीत म जमींदारी प्रथा का विरोध किया और कहा कि जमीन उसकी है जो उसे जोते। ज्वालासिंह ने घूमकर यह भी देखा कि गांव में प्लेग फैल रहा है, और लोगों की बुरी हालत है। इस कारण उसने इजाफा लगाने की दरख्वास्त खारिज कर दी। इस पर ज्ञानशंकर ने चिढ़कर उनके विरुद्ध लेख निकलवा दिये, और उसे दुष्टों का सरताज बतलाया।

ज्ञानशंकर गायत्री की स्टेट में बहुत सफल रहा। जब गवर्नर साहब ने स्टेट में दरबार कर गायत्री देवी को रानी की उपाधि दी, तो ज्ञानशंकर ने इतना अच्छा प्रबंध किया कि सब खुश

होकर गये। ज्ञानशंकर गोरखपुर ही में थे कि लखनपुर में झगड़ा खड़ा हो गया। ज्ञानशंकर के कारिंदा गौसखाँ ने अब तक सार्वजनिक रूप से व्यवहृत एक तालाब को एकाएक बन्द कर दिया। और भी जुल्म करने लगा। इसी बीच पुलिस के आई. जी. उधर दौरे पर आये। उनके साथ जो लश्करी आये, वे गांव पर टिड्डीदल की तरह टूट पड़े। सबको पकड़ कर कहीं किसी बेगार में लगाया गया। टेनिसकोर्ट बनाने के लिये बुड्ढों तक को पकड़कर लाया गया।

इस पर प्रेमशंकर बीच में पड़े, तो उन पर यह इल्जाम लगाया कि उन्हीं के इशारे पर कुछ लोग काम से इन्कार कर रहे हैं। गांव वाले तैश में आ रहे थे। प्रेमशंकर को यह भय हुआ कि कहीं दंगा न हो जाय तो उन्होंने गांववालों से कहा कि वे तहसीलदार साहब का हुक्म मानें और सब काम करें।

दुखहरण भगत गांव का एक इज्जतदार वृद्ध था। उसने टेनिसकोर्ट के लिये घास छीलने से इन्कार किया, तो इस पर उसे जूतों से पीटा गया। उसको इस पर इतनी ग्लानि हुई कि उसने शालिग्राम की मूर्ति घर से उठा ली, और उसे गांववालों के सामने बुरा-भला कहने लगा। अंत में वह बोला—आज आंखों के सामने से पर्दा हट गया, यह निरा मिट्टी का ढेला है। तीस साल की भगति का यह बदला।

गांव वालों पर अत्याचार जारी रहा। अफसर चले गये तो गौसखां कहीं नहीं गये। बहुत से लोग तो गांव छोड़कर कलकत्ता, रंगून रवाना हो गये। एक दिन बलराज की मां बिलासी चरागाह में अपने जानवरों को चरा रही थी कि इतने में गौसखं पहुंचा, और बोला—इनको यहां से ले जाओ।

पर बिलासी ने इन्कार किया। इस पर उसके सब जानवर

काँजीहौस भिजवा दिये गये। विलासी ने इसका विरोध किया तो किसीने धक्का देकर उसको जमीन पर गिरा दिया। विलासी उसी हालत में वहां पहुंची, जहां पति और पुत्र काम कर रहे थे, उसका पति मनोहर खून का घूंट पीकर रह गया, पर रात को वह चुपचाप जाकर गौसखाँ को यमपुर भेज आया। फिर उसने जाकर थाने में इजहार दे दिया। उसने सब दोष अपने ऊपर लिया, फिर भी बलराज, प्रेमशंकर आदि कई व्यक्ति गिरफ्तार हुए। मनोहर ने जब देखा कि उसके सब दोष स्वीकार करने पर भी और लोग तंग हो रहे हैं तो उसने आत्महत्या कर ली। गौसखाँ की जगह जो फैजुल्लाह आया, वह उससे भी खराब था। प्रेमशंकर छूट गये थे।

प्रेमशंकर अपने ढंग से लोगों को समझाते-बुझाते रहे। ज्ञानशंकर की बातें उनके ससुर रायसाहब पर खुलती गईं। ज्ञानशंकर ने गायत्री के स्टेट में कृष्णलीला आदि का ढोंग फैलाया। रायसाहब ने पूछा तो ज्ञानशंकर ने साफ-साफ बता दिया कि गायत्री की संपत्ति और उसका प्रेम प्राप्त करने के लिये उसने यह सब ढोंग रचा है। रायसाहब इस पर बहुत नाराज हुए और ज्ञानशंकर को बोले कि वह कभी गायत्री की तरफ न जाय। ज्ञानशंकर ने एक दिन रायसाहब के खाने में जहर मिला दिया। रायसाहब एक कौर खाकर ही ताड़ गये, पर वे ज्ञानशंकर को इसके लिये डांटते हुए भी जल्दी-जल्दी कई कौर खा गये। ज्ञानशंकर उनके पैरों पर गिर पड़ा उसने थाल भी फेंक दिया, पर रायसाहब को कुछ नहीं हुआ, क्योंकि वे योगी थे।

रायसाहब के भय के कारण ज्ञानशंकर लखनऊ पहुंचा, और वहां उसने गायत्री को एक करुण पत्र लिखा। इस पर गायत्री ने तार दिया कि वह आ रही है। गायत्री ने ज्ञानशंकर

को कृष्ण मान लिया, और खुद गाया बजा। इतने में विद्या आ गई और दोनों को बहुत भला-बुरा कहा। गायत्री रोने लगी, गायत्री ने ज्ञानशङ्कर के लड़के दयाशङ्कर को गोद लेकर उसे सारी जायदाद दे दी। इस पर विद्या को ग्लानि हुई और उसने विष खा लिया। गायत्री और ज्ञानशङ्कर में फिर भी नहीं बनी। ज्ञानशङ्कर की मानसिक अवस्था बिगड़ती गई। गायत्री मर गई। इसके बाद ज्ञानशङ्कर चुनाव के लिये खड़े हुए, और उसमें चुने भी गये। प्रेमशङ्कर ने इस बीच में एक आश्रम खोल दिया था जिसका नाम प्रेमाश्रम रखा था। प्रेमशङ्कर भी चुने गये थे।

जब मायाशङ्कर अठारह साल का हुआ, तो उसने अपनी सारी जायदाद प्रेमाश्रम में दे दी। ज्ञानशङ्कर को मायाशङ्कर के इस त्याग पर बहुत दुख हुआ। उसे एक बार इच्छा हुई कि वह भी प्रेमाश्रम में शामिल हो जाय, पर लज्जा मालूम हुई कि वह कैसे जाय। इस कारण वह गंगा में कूद पड़ा।

मायाशङ्कर, प्रेमशङ्कर के अतिरिक्त ज्वालासिंह भी जो नौकरी से इस्तीफ़ा देकर आये थे प्रेमाश्रम में शामिल हो गये।

प्रेमाश्रम पर विचार

बहुत से विषयों का समावेश

प्रेमाश्रम में बहुत से विषय आ जाते हैं। इसको पढ़ने से पुलिस वालों की बदमाशी, सरकारी कर्मचारियों के अत्याचार, जमींदारी प्रथा की बुराइयां बिलकुल सामने आ जाती हैं। इसमें प्रेमचंद ने उस समय होने वाले किसान जागरण का कुछ चित्र दिया है। एक तरफ बलराज इस जागरण का नेता है, दूसरी तरफ प्रेमशंकर, पर इन दोनों में से किसी को भी तरीका नहीं मालूम है। एक बड़बड़ाता है, तो दूसरा अपने प्रयोगों को करता रहता है, और अंत में प्रेमाश्रम बनाकर बैठ जाता है। फिर भी प्रेमशंकर बड़े क्रांतिकारी विचारों का प्रचार करता है, जैसे उसका यह कहना बहुत मार्के का है कि भूमि या तो ईश्वर की है जिसने इसकी सृष्टि की या किसान की है जो ईश्वरेच्छा के अनुसार इसका उपयोग करता है। यदि उसके इन विचारों के फलस्वरूप सिर्फ एक आश्रम बनता है, तो यह केवल प्रेमशंकर का दोष नहीं है, बल्कि उस जमाने के किसान आंदोलन की अवस्था को व्यक्त करता है।

ज्ञानशंकर

ज्ञानशंकर पात्र में हमें एक अत्यंत स्वार्थी और नीच प्रकृति जमींदार का सामना होता है, जो घर के अंदर से लेकर बाहर तक सर्वत्र नीचता ही नीचता करता है। इसके साथ ही वह

बड़ा कार्यपटु है, इससे उसकी दुष्टता और भी खतरनाक हो जाती है।

प्रेमशंकर

प्रेमशंकर का निजी चरित्र बहुत ऊंचा है, और उसके विचार भी उस वातावरण में यथेष्ट क्रांतिकारी हैं। अमेरिका से लौट कर वह प्रायश्चित करने से इन्कार करता है, जमींदारी के आधे हिस्से का मालिक होते हुए भी उस पर दावा नहीं करता। उच्च शिक्षित होकर भी नौकरी आदि के लिये चेष्टित नहीं है। उसे त्याग भी करना पड़ता है, जैसे गौसखां के मामले में उसे जेल जाना पड़ता है। वह झगड़े-बखेड़े तथा हिंसात्मक उपायों से दूर रहता है। यहां तक कि हिंसा के डर से कई बार किसानों को आत्मसमर्पण करने की सलाह देता है। अंत तक वह अपनी नैतिक शक्ति से अपनी कुसंस्कारग्रस्ता पत्नी श्रद्धा को जीत लेता है।

रायसाहब

राय साहब का चरित्र एक अपेक्षाकृत अच्छे ताल्लुकेदार का चरित्र है। पर विष खाकर भी न मरना कुछ जंचता नहीं है, और इसमें तिलस्म का प्रभाव मालूम देता है।

गायत्री

गायत्री का चरित्र एक धनी विधवा का चरित्र है। उसका दुर्भाग्य यह है कि उसे ज्ञानशंकर ऐसा बहनोई मिलता है जो उसे कुमार्ग पर घसीटने को तैयार है। फिर भी वह आंतरिक रूप से अच्छी है, और अंत तक अपनी बहिन की मृत्यु से सम्हल जाती है।

महान रचना

इस पुस्तक में भी जो कई आत्महत्यायें हैं, वे खटकती हैं। फिर भी प्रेमाश्रम ने उस जमाने के हिंदी साहित्य में एक नया मार्ग प्रदर्शित किया, इसमें संदेह नहीं, क्योंकि यह केवल एक प्रेम कहानी नहीं, बल्कि इसकी सामाजिक और राजनैतिक पृष्ठभूमि बहुत वास्तविक है। प्रेमशंकर एक हद तक गांधीवाद को लेकर चलता है, यह भी सामयिकता का ही सूचक है।

रंगभूमि

सूरदास बनारस के पास एक देहात पांडेपुर का रहने वाला था। वह सड़क पर भीख मांगता था, और कभी-कभी अमीरों की गाड़ियों के पीछे दूर-दूर तक दौड़ता था। एक दिन एक उदीयमान ईसाई पूँजीपति जान सेवक अपनी फिटन पर अपनी पत्नी और पुत्री सोफिया के साथ उसी सड़क से गुजर रहे थे। सूरदास ने भीख मांगी तो दुत्कार दिया गया। पर बाद को जानसेवक को मालूम हुआ कि यही अंधा उस जमीन का मालिक है, जिसे खरीद कर वह उस पर सिगरेट का कारखाना बनाना चाहता है। उसने सूरदास को अच्छा दाम देना चाहा, पर सूरदास ने उस जमीन को इसलिये बेचने से इन्कार किया कि उस पर गांव के ढोर वगैरह चरते थे।

जानसेवक की स्त्री बड़ी कट्टर ईसाइन है, पर उसकी लड़की सोफिया इस प्रकार नहीं है। उसमें दूसरों के प्रति भी श्रद्धा है। मिसेज सेवक उसे कट्टर बनाना चाहती है, पर वह अपनी ही राय पर अड़ी रहती है। एक दिन इसी में बात बढ़ गई, और मिसेज सेवक ने कह दिया कि इस प्रकार की विचारवालों के लिये उनके घर में स्थान नहीं है। सोफिया इस बात पर घर से निकल पड़ी, पर रास्ते में एक अग्निकांड से एक आदमी को बचाती हुई, बेहोश हो गई, और जब चौथे दिन आंख खुली तो उसने अपने को कुंवर भरतसिंह के कमरे में पाया। उसे यह भी मालूम हुआ

कि कुंवर साहब के लड़के विनयसिंह ने उसकी जान बचाई थी। परिचय मालूम होने पर जान सेवक को खबर दी गई, और जान सेवक इसलिये दौड़ा हुआ आया कि इस बहाने कुंवर साहब से परिचय हो जाने पर भविष्य में बहुत कुछ फायदा था।

उधर सूरदास गांव वालों के लिये इतना त्याग कर रहा था, पर उसके साथ कोई रियायत नहीं करता था। लड़के उसका डंडा छीनकर भागते थे, और जब कोई ऐसा करते हुए चोट खा जाता था, तो लड़कों की माएं आकर उससे लड़ती थीं, पर इन सब बातों से सूरा निराश न होकर यह सोच रहा था कि गांव वालों के लिये उस जमीन पर एक कुंआ खुदवा तथा धर्मशाला बनवा देगा।

जान सेवक ने कुंवर भरतसिंह से परिचय प्राप्त करते ही अपनी वाकपटुता से उनके हाथ अपने कारखाने के ५० हजार शेयर बेच दिये। कुंवर साहब के दामाद चतारी के राजा महेन्द्र कुमार सिंह पर भी चारा डाला गया। उधर सोफिया ने समझाने बुझाने पर भी घर जाने से इन्कार किया। पर इससे जान सेवक को कुंवर भरतसिंह के परिवार से मिलने का और अधिक मौका मिला। चतारी के राजा साहब म्युनिसिपलिटी के चेयरमैन थे, इसलिये जान सेवक को उम्मीद थी कि उनके जरिये से सूर को जमीन बेचने के लिये मजबूर किया जा सकेगा। एक दिन कुंवर महेंद्रसिंह पांडेपुर पहुंचे, और उन्होंने सूर को समझाया कि किस प्रकार वहाँ कारखाना खुल जाने से रौनक बढ़ेगी, और दूकानें आदि खुलेंगी।

पर सूरदास ने कहा कि इस रौनक से ईश्वर बचाये, क्योंकि ताड़ी, शराब का प्रचार बढ़ेगा, कस्बियां आकर बस जायेंगी, लोग बुरी-बुरी बातें सीखेंगे, पैसे के लोभ से देहातिनें धर्म बिगा-

हेंगी। और इन सबका पाप उसी के सिर पर पड़ेगा। राजा साहब को हताश होकर लौट जाना पड़ा।

सोफ़िया अच्छी होने पर भी कुंवर भरतसिंह के यहां पड़ी रही। प्रभु सेवक भी आया करता था। विनयसिंह की उससे खूब छनती थी। एक दिन उसने आवेश में आकर प्रभुसेवक से यह इशारा किया कि वह सोफ़िया से प्रेम करने लगा है। प्रभु-सेवक ने यह बात सोफ़िया से कही, पर सोफ़िया ने इस पर कोई भय प्रगट नहीं किया। धीरे-धीरे यह बात विनयसिंह की मां रानी जाह्नवी पर भी खुल गई। उन्होंने फौरन यह व्यवस्था की कि विनयसिंह राजपूताना चला जाय। विनय ने जाते समय यह कहा कि केवल देह लेकर जा रहा हूँ, हृदय यहीं छोड़े जा रहा हूँ।

पांडेपुर में भी गुल खिलते चले जा रहे थे। भैरो अपनी स्त्री सुभागी पर बहुत अत्याचार करता था। एक दिन भैरो ने सुभागी को खूब मारा, तो सुभागी घर से निकल पड़ी, पर किसी ने भी उसको आश्रय नहीं दिया। अन्त में सूरा ने आश्रय दिया। इसी दिन से सुभागी सूरदास पर स्नेह करने लगी, और भैरो उससे द्वेष रखने लगा। द्वेष इतना बढ़ा कि उसने एक दिन सूरदास की झोंपड़ी में आग लगा दी, और सूरदास की कमाईवाली थैली को भी चुरा लिया। इस पोटली में ५००) रु० थे। ये वे ही रुपये थे जिनसे वह धर्मशाला और कुंआ बनवाने की सोच रहा था।

सुभागी को जब यह बात मालूम हुई, तो उसने अपने घर से थैली चुराकर सूरदास को सौंप दी। उसने ऐसा यह समझ कर किया कि उसी के कारण उस पर विपत्ति पड़ी थी, पर सूरदास ने जाकर यह थैली भैरो को लौटा दी। इस पर भैरो को मालूम

हो गया कि सुभागी ने ही इस प्रकार घर से चुराकर थैली दी होगी, नहीं तो भला कौन इस थैली को पा सकता था। सूरदास ने फिर सुभागी को आश्रय दिया। इस पर अब की बार सूरे की बड़ी बदनामी हुई। जिन गांववालों के लिये वह मर रहा था, वे ही उसे बदनाम करने लगे। यही नहीं प्रभुसेवक आदि के समझाने पर बहुत से गांववाले यह चाहने लगे कि जमीन बेच दी जाय। पर सूरा डटा रहा।

रानी जाह्नवी सोफिया से कुछ खिंची हुई रहती थीं। सोफिया को यह भी शक हुआ कि उसके नाम से विनय के पत्र आते हैं, और वह उन्हें चुरा लेती हैं। इसी धारणा में वह रानी के कमरे में गई, और विनयसिंह के पत्रों को निकाल कर पढ़ गई। उन पत्रों को पढ़कर उसने विनय को एक पत्र लिखा कि मुझे अपने पास बुला लो, पर साथ ही अफसोस हुआ कि चोरी से पत्र पढ़े। तब उसने रानी जाह्नवी से अपनी चोरी की बात बता दी। इस पर रानी जाह्नवी ने उसे आस्तीन का सांप आदि बतलाया, साथ ही यह कहा कि वह अपने बेटे को सच्चा राजपूत बनाना चाहती है, वह इस बात से खुश होगी कि उनका पुत्र किसी अच्छे कार्य में जान देते।

प्रभुसेवक के मार्फत विनय ने सोफिया को एक पत्र भेजा। पर सोफिया को यह पत्र मिला तो उसने जाकर यह पत्र रानी जाह्नवी को दे दिया। रानी जाह्नवी ने सोफी से यह वादा कर लिया कि वह फौरन विनय को वह पत्र लिखेगी, यह उसे अपना भाई समझती है और इसी रूप में संबंध रहेगा। पर जब पत्र लिखने चली तो उसमें विनय के पत्र को देखने की तीव्र इच्छा हुई, और वह चोरी से पत्र पढ़ने चली। पर इसमें वह रानी द्वारा पकड़ ली गई, और बेहोश हो गई। इस बीच में मिसेज़ सेवक

इस लोभ से कि सोफिया का विवाह मजिस्ट्रेट मिस्टर क्लार्क से हो जायगी, धार्मिक मतभेद भूल कर उसे घर बुला लाई।

विनयसिंह जसवन्त नगर में जनता की सेवा में लगे हुए थे। उसने मां को अपने कष्टों का वर्णन लिखा था, इससे आशा थी कि मां उसे बुला लेगी, पर ऐसा नहीं हुआ। विवश होकर विनयसिंह ग्रामसुधार के कार्य में लगे रहे। प्रजा में विद्रोह के लक्षण ज्ञात होने लगे। एक दिन विनय पेड़ के नीचे बैठे थे तो अकस्मात् उनकी भेंट डाकुओं के नेता वीरपालसिंह से हुई। पर वीरपालसिंह डाकू नहीं, बल्कि रियासत के विरुद्ध बागी थे। दोनों में बहुत बातें हुईं। बाद को विनय को रानी-जाह्नवी का यह पत्र मिला कि सोफिया की मंगनी हो चुकी है, इसलिये कोई आशा मत रखो। यह भी लिखा कि "तुमने मेरी आशाओं को मिट्टी में मिला दिया, तुम इतनी आसानी से इन्द्रियों के दास हो जाओगे, यह मुझे पता नहीं था।" जब विनयसिंह ने यह बात देखी कि सोफिया भी गई, और मां की नजरों में गिर चुका, तो उसने आत्महत्या का विचार किया। पर इतने में वीरपालसिंह के द्वारा कृत एक डकैती के संबंध में वह गिरफ्तार हो गया। छै महीने जेल में पड़े रहने के बाद वीरपालसिंह उसे जेल से छुड़ाने आया, पर उसने छूटने से इन्कार किया।

तब रियासत के दीवान की आंख खुली, पर उन्होंने उसे सलाह दी कि वे रियासत छोड़ कर चले जायं। पर इसके लिये वह राजी नहीं हुआ। इस पर उसे जेल भेज दिया गया।

सोफिया घर तो लौट आई, पर क्लार्क से मंगनी की बात झूठी थी। वह तो क्लार्क को पास फटकने नहीं देती थी। रानी जाह्नवी ने यों ही लिख दिया था। उसे यह मालूम हुआ कि क्लार्क अपने अधिकार का उपयोग कर सूरदास की जमीन जान

सेवक को दिला रहा है, तब उसने समझा-बुझाकर क्लार्क से यह आज्ञा मन्सूख करा दी। पर चतारी के राजासाहब ने इस मन्सूखी को अपना अपमान समझा और वे आन्दोलन करने लगे मिस्टर क्लार्क का तबादला हो गया। मिस्टर क्लार्क वहीं तैनात हुए थे जहां विनय था। सोफिया भी उनके साथ गई और विनयसिंह से जेलमेंमिली। विनयसिंह को यह मालूम हुआ कि रानी जाह्नवी ने जो यह लिखा था कि सोफिया क्लार्क की हो चुकी है, यह गलत है। वहीं पर एक दूसरे ने प्रतिज्ञा की कि वे एक दूसरे के हैं। सोफिया ने यह कोशिश की कि वह छोड़ दिया जाय, पर इसमें अभी सफल नहीं हो पाई थी कि कुंवर भरतसिह की तरफ से नायकराम ने आकर उसे जेल से यह कहकर भागने पर राजी किया कि उसकी मां बीमार है।

छूटने पर वह एक झमेले में फंस गया। क्लार्क के मोटर से एक व्यक्ति दब गया था। इसी पर वीरपाल के नेतृत्व में जनता बिगड़ रही थी। सोफिया भी क्लार्क की तरफ से बहस कर रही थी। इतने में सोफिया को किसीने ढेला मारा। विनय को इस पर तैश आ गया, और वह वीरपाल पर लपका, पर गिरा दिया गया। वीरपाल के लोग सोफिया को लेकर भाग गये। बहुत मुश्किलों से विनयसिह क्रांतिकारियोंके डेरे में पहुंचकर सोफिया से मिल पाये। विनय रियासत की तरफ से आये थे, और सोफिया इस बीच में क्रांतिकारिणी हो चुकी थी, इसलिए सोफिया विनय के साथ नहीं आई।

सूरदास पर इस कारण मुकदमा चला कि उसने एक बुरी औरत सुभागी को जगह दी। सूरे को सजा हो गई, पर कुछ दिनों में ही उसका जुर्माना अदा कर दिया गया, और वह छूट गया। उसके जुलूस के लिये भी प्रबंध था, पर किसी कारण वह

न निकल सका, इसलिये इस कार्य के लिये जो ३००) रु० चंदा किया गया था, वह उसे दे दिया गया। सूरे ने गांव में आकर देखा कि किसीने भैरो के घर में आग लगा दी है, इसलिये सूरे से रहा नहीं गया, और उसने उन ३००) रु० को भैरो को दे दिया। इस पर भैरो की आंख खुल गई, और उसने सूरे से माफी मांगी, और सुभागी को घर में ले लिया।

विनय जब रियासत में लौटा तो देखा कि रियासत वाले भी अब उस पर विश्वास नहीं करते, क्योंकि गुप्तचरों से उन्हें पता लगा था कि वह क्रांतिकारियों के जरिये सोफिया से मिल चुका था। इधर माता का एक पत्र आया जिसमें यह लिखा था कि तुम व्यर्थ ही जीवन गंवा रहे हो। उसमें यह भी कहा गया था कि सात जन्म में भी ऐसी सन्तान न हो। विनय ने घर जाना तय किया। पांचवें स्टेशन से थोड़ी दूर पर गाड़ी रुक गई और सोफिया गाड़ी पर सवार हुई। सोफी का दिल क्रांति की बातों से ऊब चुका था, दोनों में प्रेम की बातें होने लगीं। सोफी ने विनय को बीच में उतर पड़ने के लिये राजी किया। वह राजी हो गया। कुछ दिनों तक वे जंगली जीवन व्यतीत करते रहे, फिर वे घर की ओर चले। रानी ने सोफी का स्वागत किया। विनय ने मां के सामने आत्महत्या करनी चाही, पर पकड़ लिया गया। रानी ने कह दिया कि वह उसे अब क्षमा कर चुकी है।

सूरदास की जमीन ही नहीं, पूरी बस्ती ले ली गई। लोगों को कुछ-कुछ क्षतिपूर्ति देने की बात चली। सूरदास ने सत्याग्रह का सोचा। जनता ने उसका साथ दिया। इतने में विनयसिंह आये, तो लोग उसे ताना देने लगे कि इतने दिन कहां छिपे रहे। तब विनय ने पिस्तौल निकाल कर यह कहा— क्या आप देखना चाहते हैं कि रईसों के बेटे कैसे प्राण देते हैं—कह कर उसने

आत्महत्या कर ली।—सोफिया इस पर बेहोश हो गई। फिर उसने उठकर दाहक्रिया आदि की। सत्याग्रह में सूरदास को गोली लगी, और वह कई दिनों तक जीवित रहा। अंत में उसने यही कहा—तुम जीते मैं हारा।

उस गांव पर जान सेवक का पूरा कब्जा हो गया, और थोड़े दिनों में ही वहां कारखाना खुल गया। सोफिया पर जब क्लार्क से शादी करने का दबाव डाला गया, तो उसने आत्म-हत्या कर ली। मिसेज़ सेवक को इस घटना से गहरा धक्का पहुंचा और वह पागल हो गई। जान सेवक निर्लिप्त भाव से अपना कारखाना चलाते रहे।

इसी समय सूरदास की मूर्ति प्रतिष्ठित करने का आन्दोल चला। चतारी के राजा इस आन्दोलन के विरोधी थे, पर इं इस समय सार्वजनिक क्षेत्र में आ गई, और उसने खूब का किया। सूरे की मूर्ति की बहुत धूमधाम से स्थापना हुई। रा महेन्द्र कुमार ने आधी रात के समय जाकर मूर्ति को तं दिया। मूर्ति टूटने पर राजा साहब के ऊपर गिरी और उन मृत्यु हो गई।

रानी जाह्नवी और इन्दु सेवादल का कार्य करती र कुंवर भरतसिंह फिर से विलास की जिंदगी बिताने लगे। इस समय उनका विश्वास ईश्वर पर से हट गया। उन्हें दु में शून्य के सिवा और कुछ दृष्टिगोचर ही न होता था।

रंगभूमि पर विचार

समसामयिक समाज का चित्र

प्रेमचन्द के उपन्यासों में रंगभूमि का आकार सबसे बड़ा है। यदि 'गोदान' न लिखा जाता, तो इसमें संदेह नहीं कि रंगभूमि प्रेमचन्द का सबसे उत्कृष्ट उपन्यास समझा जाता। जैसा कि इसके नाम से ज्ञात है, इसमें समसामयिक समाज का पूरा चित्र खींचा गया है। १६२४ में यह उपन्यास लिखा गया था, इसलिए इसमें असहयोग आंदोलन का असर स्पष्ट है।

सूरा और गांधीजी

सूरे का चरित्र विचारधारा, तथा कर्मप्रणाली की दृष्टि से गांधीजी से मिलता है। वह अहिंसा और सत्य में विश्वास करता है, तथा इसी धुन में अपना प्राण दे देता है। उसने मिलों के विरोध में जो विचार जगह-जगह पर व्यक्त किये हैं वे गांधीजी के उन विचारों से मिलते हैं, जिन्हें उन्होंने अपने 'हिंद स्वराज्य' में व्यक्त किया था। सूरदास का अपना कोई नहीं था। वह सब गांववालों को ही अपना समझता था। सूरदास बिलकुल सच्चे माने में अद्रोही है। वह चोर के घर में गठरी पहुंचा देता है। सबसे बड़ी बात यह है कि अंत में वह अपने ढंग से लड़ते हुए प्राणों का बलिदान कर देता है। सूरदास में प्रेमचन्द ने एक ऐसे चरित्र की सृष्टि की है जो गांधीवादी युग का एक सुन्दर प्रतीक है।

विनय दुर्बलचित्त युवक

विनय का चरित्र भले घर के एक दुर्बल चित्त नौजवान का चित्र है। सिखाये पूत दरबार नहीं किया करते, इस कहावत को वह सर्वथा चरितार्थ करता है। उसके अपने अंदर किसी प्रकार की देशसेवा या परोपकार की भावना नहीं है, पर अपनी माता के जबर्दस्त व्यक्तित्व के प्रभाव में पड़कर वह जनसेवा करने निकलता है। उसने जन सेवा को कुछ देर तक दिल से इस कारण अपनाया था कि वह समझता था कि सोफिया का विवाह क्लार्क से हो चुका है। पर ज्योंही उसे यह ज्ञात होता है कि यह बात झूठी है, त्योंही उसकी परोपकारी भावनायें उखड़ जाती हैं, और इसके बाद उसके सारे आचरण एक विक्षिप्त युवक के आचरण हैं। अवश्य भीतर-भीतर उसमें यह विवेक बन चुका है कि उसे कुछ जनहित करना चाहिए, इसलिये वह जनता के द्वारा कोसे जाने पर ताव में आ जाता है, और आत्म-हत्या कर लेता है।

सोफिया भी उसी की तरह

सोफिया के संबंध में भी वे ही बातें कही जा सकती हैं, जो विनय के संबंध में कही गईं। अवश्य इतना तो स्पष्ट है कि वह अपनी मां मिसेज़ सेवक से कहीं अधिक प्रगतिशील है। पर उसकी यह प्रगतिशीलता बहुत कुछ केवल दिमागी ऐयाशी मात्र है। जसवंत नगर में वह क्रांतिकारियों के इतने प्रभाव में आ जाती है कि वह विनय के साथ लौटने से इन्कार करती है, क्योंकि विनय उसकी तलाश रियासत की मदद से और रियासत की ओर से कर रहा था। पर बहुत जल्दी ही वह क्रांतिकारी जीवन से ऊब जाती है। हां, एक विषय में उसका लोहा मानना ही पड़ेगा। वह भले ही क्रांतिकारिणी न हो, विनय फिर

की सच्ची प्रेमिका है। यदि उसने किसी से प्रेम किया, तो उसीसे किया और जब विनय के मरने के बाद उसकी मां ने उसे तंग किया, तो उसने आत्महत्या कर ली।

जानसेवक पक्का व्यापारी

जानसेवक एक पूंजीपति का चित्र है। घर में और बाहर में वह सबकी खुशामद करता है, पर हर मौके से अपने धंधे का फायदा कर लेता है। सोफिया जलते-जलते बचती है, पर वह इस प्रकार से जो नये परिचय होते हैं, उनको अपने सिगरेट के नये कारखाने के लिए पूरे तरीके से काम में लाता है। वह फौरन भरतसिंह को ५०,०००) रु० का शेयर बेच देता है। केवल यही नहीं वह भरतसिंह के दामाद राजा महेन्द्रकुमार से परिचय प्राप्त कर उनके जरिये से सूरदास की जमीन को पाने की तरकीबें कर लेता है। वह सोफिया के अन्य प्रेमिक मिस्टर क्लार्क से भी अपने सब काम निकालता है। उसमें न कोई उदात्त विचारधारा है, और न कोई सिद्धांत है, सिवा इसके कि मुनाफा करे। फिर भी वह परम सिद्धांतवादी सूरे पर नैतिक रूप से न सही, व्याव-हारिक रूप से विजय प्राप्त कर लेता है। जानसेवक में प्रेमचंद ने एक प्रतिनिधि पूंजीपति का चित्र खींचा है।

धर्म के प्रति उसका रुख

धर्म के प्रति इस व्यक्ति का रुख विशेषकर द्रष्टव्य है। वह मन से मानता है कि धर्म में कुछ धरा नहीं है, पर नियमित रूप से गिर्जे में जाता है, आंख मूंदकर भजन गाता है। यह सब इसलिए कि अपने समाज में उसकी साख बनी रहे, और उसके व्यापार में कोई हानि न हो। वह अपनी स्त्री और पुत्री में धार्मिक झगड़े देखकर मन-ही-मन कुढ़ता है, पर इस प्रकार से

चलता है कि घर में शांति रहे। उसे यह शांति इस कारण चाहिए कि व्यापार में चित्त लगा सके।

राजा महेन्द्रकुमार

राजा महेन्द्रमारसिंह का चरित्र एक विशिष्ट चरित्र है। वह पुराने राजाओं की तरह आन पर डटने वाला जीव है। उसे सिगरेट के कारखाने में कोई वैयक्तिक दिलचस्पी नहीं थी। पर जब वह उसमें एक बार पड़ गया, तो उसने उसको वैयक्तिक विषय बना लिया। फिर वह अंत तक इसी में लड़ता रहा। केवल यही नहीं जब उसने देखा कि सूरा मर गया, फिर भी लोग उसे भला कह रहे हैं, और उसे बुरा कह रहे हैं, तो उसे इतनी ईर्ष्या आई कि उसने जाकर सूरे की मूर्ति को तोड़ डाला। मूर्ति उसके ऊपर गिरी और वह मर गया।

रानी जाह्नवी एक आदर्शवादी महिला

रानी जाहवी एक आदर्शवादी महिला है, पर उसने अपने सामने एक ऐसा आदर्श बना रखा है, जो बहुत कठिन है, और विनय के लिए तो वह संभव ही नहीं था। रानी जाह्नवी की गलती यह है कि वह विनय की इस कमी को जानकर भी जानने से इन्कार करती है, इसी का नतीजा यह है कि अंत तक सारी बातें दुःखांत हो जाती हैं।

भैरो का चरित्र

भैरो का एक ऐसा चरित्र है जो परिस्थितियों की थपेड़ बुरा-से-बुरा हो जाता है। वह अपनी स्त्री को मार-पीट करता पर उसके पीछे यह भावना है कि कहीं वह उसकी मां अन्याय न करे। फिर वह सुभागी को आश्रय देने के कारण पर इतना बिगड़ जाता है कि उसके घर में आग लगा देता और साथ ही उसकी थैली मार लेता है। वह सूरे को बद

करने से भी नहीं चूकता, पर जब सूरा जेल से लौटकर उसे घर बनाने के लिए ३००) रु० दे देता है, तब उसका हृदय परिवर्तित होता है, और वह समझ जाता है कि सूरा एक ईमानदार आदमी है।

सुभागी एक अच्छी स्त्री

सुभागी एक बहुत अच्छी स्त्री है, जो भैरो के अत्याचारों के कारण सूरा के यहां आश्रय लेती है। इस पर उसकी बदनामी होती है, पर वह अपने में सच्ची है, और अंत तक सूरे का साथ देती है। फिर सत्य की विजय होती है, और भैरो उसे फिर से ग्रहण करता है।

सब तरह के दर्जनों पात्र

रंगभूमि उपन्यास में दर्जनों पात्र हैं, और इनमें हिंदू, मुसलमान, ईसाई, पूंजीपति, मजदूर, किसान, जमींदार, दरोगा, पुलिसवाला, जेलर, कलेक्टर, दीवान, क्रांतिकारी सब तरह के लोग आते हैं। हम यहां केवल एक और पात्र का जिक्र करेंगे वह है वीरपालसिंह। वीरपालसिंह आधा क्रांतिकारी और आधा एक अराजकवादी सा है। उसके विचार स्पष्ट नहीं है। फिर भी वह विद्रोह करता है। वह व्यक्तिगत रूप से बहुत बहादुर है, त्याग बलिदान से भी वह कभी मुंह नहीं मोड़ता।

सब मिलाकर रंगभूमि एक दिलचस्प उपन्यास हो गया है और सचमुच यह समसामयिक समाज की रंगभूमि है।

कायाकल्प

तहसीलदार मुंशी वज्रधरसिंह के पुत्र चक्रधर एम०ए० पास थे। पिता की इच्छा थी कि पुत्र नौकरी करे, पर पुत्र का अधिकांश समय समाज-सेवा में व्यतीत होता था। अंत में बहुत अधिक दवाव पड़ने पर चक्रधर जगदीशपुर के दीवान ठाकुर हरिसेवकसिंह की कन्या मनोरमा को पढ़ाने लगे। मनोरमा चक्रधर से प्रभावित होकर उन्हें चाहने लगी।

इधर यशोदानंदन चक्रधर को शादी के सिलसिले में आगरा ले गये। वहां गाय की कुर्बानी पर हिंदू-मुस्लिम दंगा होनेवाला था। चक्रधर ने जान पर खेलकर दंगा रुकवा दिया। यशोदानन्द की पालिता कन्या अहल्या इस पर बहुत प्रभावित हुई, और चक्रधर के साथ उसका विवाह निश्चित हो गया। इधर मुंशी वज्रधरसिंह चक्रधर की नौकरी का फायदा उठाकर दीवान साहब से रब्त जब्त बढ़ाने लगे। वे उस इलाके में तहसीलदार हो गये, और औरों की तरह मनमानी करने लगे। इसके साथ ही उन्होंने स्टेट के भावी मालिक ठाकुर विशालसिंह से भी परिचय बढ़ाना शुरू किया।

जगदीशपुर की रानी देवप्रिया विधवा होते हुए भी भोगविलास में अपना जीवन विताया करती थीं। उनके प्रेमी बनकर एक ऐसे राजकुमार पहुंचे जो पूर्वजन्म में उनके पति थे। रानी को उन्होंने बताया कि मृत्यु के बाद भी उन्हें किस प्रकार उनकी याद आती थी। फिर उनका जन्म हुआ, शिक्षा के लिये बर्लिन गये और वहां एक

तिब्बती साधु से उनकी मुलाकात हुई। इसी के साथ वे तिब्बत गये, और अलौकिक शक्तियां प्राप्त कीं। राजकुमार के प्रस्ताव पर रानी देवप्रिया अपना सारा राज्य ठाकुर विशालसिंह को देकर उनके साथ चली गई।

इधर चक्रधर के प्रति मनोरमा का स्नेह बढ़ता ही जा रहा था, और समय-समय पर उसका प्रदर्शन हो जाता था। ठाकुर विशालसिंह के राजतिलक की तैयारियां इस समय जोरों से हो रही थीं। इसके लिये आसामियों पर जबर्दस्ती चंदा लगाया गया था। चारों ओर लूट-खसोट हो रही थी। चक्रधर ने जब यह हाल देखा, तो उन्होंने विशालसिंह तक यह बात पहुंचाई पर विशालसिंह ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया, उल्टे उन्हें ही भला-बुरा कहा। राज्य की ओर से जबर्दस्ती होती रही, और असंतोष बढ़ता गया। तिलक के तीन दिन पूर्व घास छीलनेवालों ने ऊबकर खुद अपनी शिकायत राजा से की, राजा ने उन्हें उल्टे और डांटा। इसी समय चक्रधर ने आकर किसानों के पक्ष का समर्थन किया। तैश में आकर राजा साहब ने अपनी बन्दूक का कुन्दा चक्रधर को दे मारा। चक्रधर गिर पड़े। इस पर मजदूर जोश में आ गये और दंगा हो गया। लोग मजिस्ट्रेट को मार रहे थे, पर चक्रधर ने अड़कर उसे बचा लिया। पर मजिस्ट्रेट ने इसके बदले चक्रधर को जेल में ठूंस दिया। उनसे बहुत कहा गया कि वे माफी मांग लें, पर ऐसा करने से उन्होंने इन्कार कर दिया।

इसी बीच मनोरमा ने चक्रधर को छुड़ाने के लिए राजा विशालसिंह से कई बार भेंट की। यद्यपि राजा विशालसिंह की अवस्था ढल गई थी, और उनकी तीन स्त्रियां थी, परन्तु फिर भी वे मनोरमा के रूप गुण, शील, पर लट्टू हो गये। उन्होंने

मुंशी वज्रधरसिंह से यह बात कही, और उनके द्वारा विवाह तय हो गया। इसी बीच जेल में दंगा हो गया। कैदियों ने मिलकर दारोगा की खूब मरम्मत की। चक्रधर ने उन्हें किसी तरह पिटने से बचाया। पर इसी के बाद जेल की गारद, और फिर पुलिस आई। कैदियों की खूब खबर ली गई, और चक्रधर को भी बहुत चोट आई। मनोरमा ने राजा साहब पर जोर डाला कि वे मजिस्ट्रेट के पास जाकर चक्रधर को बाहर के अस्पताल में भिजवा दें। राजा साहब और मजिस्ट्रेट मिस्टर जिम में मार-पीट भी हो गई; पर बाद में वे चक्रधर-संबंधी बात को मान गये। चक्रधर ने यह पक्षपातपूर्ण व्यवहार पसंद नहीं किया। वे जेल में ही बने रहे। दंगा कराने का अभियोग भी चक्रधर के सिर पर मढ़ा गया। उनका मुकदमा मनोरमा के भाई गुरुसेवकसिंह के इजलास में आया, पर मनोरमा के जोर देने पर वे इस अभियोग से बरी कर दिये गये, और उनका चालान आगरा जेल में हो गया। यहीं पर उन्हें अहल्या से भेंट के समय राजा साहब के साथ मनोरमा के विवाह का समाचार ज्ञात हुआ।

जेल से छूटने पर चक्रधर का जोरों से राज्य की ओर से स्वागत किया गया। इसमें मनोरमा का हाथ था। इसके बा[illegible] मनोरमा के आग्रह पर दोनों गांव-गांव घूमकर राज्य में प्रज[illegible] को सुखी करने की कोशिश करने लगे।

पहुंचे। यशोदानन्दन की अंत्येष्टिक्रिया के तीन दिन बाद उन्होंने अहल्या से विवाह किया, और वापिस लौट आये। चक्रधर के माता-पिता ने वधू का न चाहते हुए भी स्वागत किया। अहल्या को मुसलमानों ने उड़ा लिया था इसलिये उससे कुलधान मानते थे। एक दिन यह भेद खुल गया, तो चक्रधर अहल्या को लेकर इलाहाबाद चले गये। वहां पर वे जैसे-तैसे दिन बिताने लगे। इस बीच में उनका एक पुत्र हुआ। उसका नाम शंखधर रखा गया।

इसी समय एक तार मिला जिसमें मनोरमा को सख्त बीमारी की खबर थी। चक्रधर अपनी पत्नी तथा शिशु पुत्र के साथ बनारस रवाना हो गये। उनके पहुंचते ही मनोरमा की बीमारी अच्छी होने लगी। बात यह है कि उसके मन में अब भी चक्रधर के प्रति प्रेम था।

अहल्या के सम्बन्ध में कुछ ऐसे प्रमाण मिल गये जिससे यह ज्ञात हो गया कि वह राजा की बीस साल पहले खोई हुई लड़की है। उसे उसके अधिकार दे दिये गये और वह खासी अमीरजादी हो गई। उसे न पति की परवाह रही न पुत्र की। पुत्र शंखधर अब मनोरमा के पास ही अधिक रहता था। चक्रधर अजीब परेशानी में हो गये, क्योंकि उन्हें कोई अपना नहीं मालूम देता था। वह इधर-उधर घूमा करते थे। एक दिन मोटर भगाकर जा रहे थे कि सांड़ सामने आ गया। सांड़ को भगाने के लिये वे नीचे उतरे तो सांड़ उनके पीछे पड़ गया। उन्होंने पेड़ पर चढ़कर जान बचाई, पर सांड़ ने मोटर का बुरा हाल कर डाला। सांड़ चला गया तो जो व्यक्ति सामने मिला, उसी को उन्होंने कहा—मोटर ठीक कराओ। जब उसने इन्कार किया, तो वे अकड़ गये और गालियां देने लगे। धक्कमधक्का भी

हो गया। इतने में उस गांव वाले का भाई आ गया, तो पता लगा कि यह उनके जेल का साथी धन्नासिंह है। फिर तो वे धन्नासिंह के घर में गये। थोड़ी देर में मनोरमा मोटर पर उनकी तलाश में आई, और उन्हें लेकर लौट गई।

अहल्या ऐश्वर्य में डूबी हुई थी। वह पुराने वातावरण में लौटने को तैयार नहीं थी, तब चक्रधर चुपके से वहां से चले गये। इसी बीच में धन्नासिंह का भाई उसी चोट से मर गया। इस पर क्षतिपूर्ति के तौर पर धन्नासिंह को काफी जमीन मांफी में दे दी गई। शंखधर अपने पिता को खोजने के लिये निकल पड़ा और उन्हें ढूंढ़ निकाला। उसने गुप्त रूप से अहल्या को एक पत्र भी दिया, पर अहल्या बहुत बीमार थी। यह समाचार पाकर शंखधर घर के लिये रवाना हो गया। वह जा ही रहा था कि रास्ते में किसी अज्ञात शक्ति के कारण 'हर्षपुर' पहुंचा। एक विशाल भवन के भीतर वह रानी से मिलने के लिये चला। यद्यपि उसने यह महल इस जन्म में नहीं देखा था, पर उसे इसकी एक-एक चीज याद आ रही थी। रानी को खबर दी गई तो वह नाराज हुई, पर स्मरण हो आने पर वह शंखधर के पास पहुंची, क्योंकि यह पूर्वजन्म में उसके पति थे। दोनों खूब मिले। फिर अगले दिन शंखधर रवाना हो गये।

राजा साहब ने जब यह देखा कि बीस साल मिलने पर भी लड़की, नाती, दामाद सबने उनका साथ छोड़ दिया, तो वे बहुत दुखी हुए। वे मनोरमा पर भी नाराज हो गये, और प्रजा पर अत्याचार करने लगे। राजा साहब ने नई शादी तय की। बरात तैयार ही थी कि शंखधर के साथ अहल्या और कमला भी आईं। यह कमला और कोई नहीं भूतपूर्व रानी देवप्रिया थी। पर शंखधर और कमला का मिलन अधिक दिन नहीं

टिका, क्योंकि शंखधर ने कहा कि हम तब मिलेंगे जब हममें वासना न हो। शंखधर की मृत्यु का समाचार सुनकर राजा साहब भी मर गये।

चक्रधर आये तो उन्हें यह सब सुनकर बहुत दुख हुआ। उनके आने पर अहल्या भी मर गई। अंतिम दृश्य यह है कि देवप्रिया फिर राज्य करने लगी, पर अब वह तपस्विनी देवप्रिया है।

फिर भी गाँवों का अच्छा चित्रण

कायाकल्प के जन्मांतर आदि को छोड़ दिया जाय, तो इसमें गांवों का अच्छा चित्रण किया गया है, गांवों में किस प्रकार छोटी-छोटी बात पर किसान अपने जमींदारों तथा राजाओं के शिकार हो जाते हैं, यह इसमें चित्रित किया गया है।

शौकिया समाज सेवक

चक्रधर भी रंगभूमि के विनय की तरह एक शौकिया समाज सेवक है। वह भी विनय की तरह किसानों की हिमायत करता हुआ जेल पहुंच जाता है, पर वहां से लौट कर जब एक बार गांव में जाता है, और एक किसान उसके कहने पर मोटर की बेगार करने से इन्कार करता है, तो वह उसे इतना मारता है कि वह बाद को मर जाता है। अपने चरित्र के अनुसार इस मृत्यु की क्षतिपूर्ति के लिये मृत व्यक्ति के रिश्तेदारों को कुछ जमीन माफ़ी में दी जाती है।

अहिंसा पर दृढ़ नहीं

और भी एक मजे की बात यह है कि चक्रधर की अहिंसा 'रंगभूमि' के सूरदास की अहिंसा की तरह दृढ़ नहीं है। जब तक वह स्वयं किसानों का नेतृत्व करता है, तब तक अहिंसा का उपदेश देता है, और उन्हें अहिंसात्मक रहने को कहता है, पर जब उसकी मोटर बिगड़ जाती है, तो वह हिंसा भूलकर बेगार न देने पर किसान पर पिल पड़ता है।

मनोरमा की उदारता

मनोरमा का चरित्र एक अद्भुत चरित्र है। शुरू से अन्त

तक वह जो कुछ करती है चक्रधर के प्रति अनुराग के कारण करती है। चक्रधर को छुड़ाने के लिये उसने राजा विशालसिंह से शादी करना स्वीकार कर लिया। बाद को भी बराबर वह उसे मदद पहुंचाती रही। उसके चरित्र में और एक खास बात यह है कि उसने अहल्या से कभी ईर्ष्या नहीं की, उसका चरित्र प्रेमचन्द के द्वारा श्रेष्ठ उदारतम चरित्रों में है।

अहल्या चरित्र के परिवर्तन

अहल्या का चरित्र भी एक अद्भुत चरित्र है, पर दूसरे अर्थ में। वह अपने मन से चक्रधर से शादी करना स्वीकार करती है, जब वह दंगे के अवसर पर उड़ा दी जाती है, तो वह बहुत साहस का प्रदर्शन करती है, और आततायी का खून कर डालती है। उसमें स्वाभिमान भी कूट-कूट कर भरा हुआ है क्योंकि जब उसे मालूम हो जाता है कि उसके ससुराल के लोग उसके हाथ का छुआ इस कारण नहीं खाते कि मुसलमानों ने उसे भगाया था, तो वह फौरन पति के साथ ससुराल छोड़कर चल देती है। पर जब उसे एकाएक मालूम हो जाता है, कि वह राजा की लड़की है, तो वह ऐश्वर्य के भोग में डूब जाती है, यहां तक कि अपने पुत्र और पति के प्रति भी उदासीन हो जाती है। जब इस पर पति छोड़कर चल देता है, तब वह सम्हल जाती है। उसके चरित्र मेंकाफी मनोवैज्ञानिक टेढ़े-मेढ़े रास्ते हैं।

एक राजा का चित्र

राजा विशालसिंह में हम एक राजा को देख सकते हैं। राजगद्दी पाने के पहले यह भी किसानों की सेवा का दम भरते थे। बाद को वे बहुत अत्याचारी निकले। तीन-तीन स्त्रियां होते हुए भी उन्होंने तरुणी मनोरमा से शादी की, और आगे चलकर पांचवीं की भी तैयारी कर रहे थे।

कारिन्दों द्वारा उत्पीड़न

राजाओं के कर्मचारी किस प्रकार उत्पीड़न करते हैं, यह ठाकुर हरिसेवक सिंह और वज्रधरसिंह के चरित्र और कारनामों से स्पष्ट हो जाता है।

ग़बन

रमानाथ के पिता दयानाथ कचहरी में नौकर थे। रिश्वत लेने की सुविधा होने पर भी वे रिश्वत को हराम समझते थे। रमानाथ का विवाह मुंशी दीनदयाल की कन्या जालपा के साथ तय हुआ। मुंशी दीनदयाल जमींदार के मुख्तार थे, और उन्होंने बहुत रुपया पैदा कर लिया था। उन्होंने कन्या के विवाह में एक हजार रुपये का टीका दिया। स्वाभाविकतया दयानाथ की ओर से भी हैसियत से अधिक खर्च हुआ, और वे कर्ज से लद गये। गहने भी खरीदे गये, किन्तु चंद्रहार नहीं खरीदा गया। चंद्रहार न देखकर जालपा को बहुत दुख हुआ।

विवाह हो जाने के उपरांत ऋण चुकाने के लिये तकाजे पर तकाजे होने लगे। लाचार होकर दयानाथ ने अपने बेटे रमानाथ को बुलाया, और तय किया कि सराफ के जितने रुपये बैठते हैं, उतने के आभूषण देकर उसके रुपये अदा कर दिये जायं। रमानाथ अपनी नवविवाहिता पत्नी से अपनी हैसियत के बारे में लम्बी-चौड़ी बातें कह चुका था। अतएव उसके सामने सारी परिस्थिति को रखना, और फिर गहने वापिस लेना, उसे ठीक नहीं जचा। बहुत सोच-विचार कर एक रात में जब जालपा सो रही थी, उसने गहने चुराकर अपने बाप को दे दिये। दूसरे दिन जालपा से कह दिया गया कि गहने चोरी चले गये। दयानाथ गहनों के बक्स को लेकर सराफ के पास गये। २५००) रु० के गहने १५००) रु० में चले गये, साथ ही ५० बाकी रहे आये।

अंत में रमानाथ ने म्युनिसिपैलिटी में तीस रुपया मासिक की नौकरी कर ली। कुछ ऊपरी आमदनी भी हो जाती थी। जालपा का गहनों के लिए तकाजा बढ़ता ही जाता था, पर वह उधार पर गहने लेने के पक्ष में न थी। फिर भी रमानाथ ने उधार पर साढ़े छै सौ रुपये के आभूषण खरीदे, जो उसकी आमदनी को देखते हुए बहुत बड़ी रकम थी। गहने पाकर जालपा को बड़ी खुशी हुई, और उस दिन से उसकी पतिभक्ति और पतिसेवा में वृद्धि हुई। उसके साथ ही उसने महिला समाज में बन-ठनकर आना-जाना शुरू कर दिया। इससे खर्च और बढ़ गया। ऋण का भार कम होने के स्थान पर दिनों-दिन बढ़ता ही गया।

इसी समय जालपा का परिचय हाईकोर्ट के एडवोकेट इन्द्र-भूषण की पत्नी रतन से हुआ। जालपा को उसने अपने पति सहित अपने यहां निमंत्रित किया। रतन को जालपा के जड़ाऊ कंगन बहुत पसंद आये, और उसने रमानाथ को छै सौ रुपये वैसे कंगन खरीदने के लिए दिये। रमानाथ उन रुपयों को लेकर उसी सराफ के पास गया जिससे उधार पर जालपा के लिए गहने लिये थे। उसने रुपये रख लिये, और नये गहने देने से इन्कार कर दिया। इधर रतन के तकाजे बढ़ने लगे। लाचार होकर वह अपने दफ्तर की आमदनी को खजाने में जमा न कर अपने घर उठा लाया। ऐसा करने में उसका उद्देश्य रतन को तसल्ली देना था कि उसके रुपये कहीं नहीं गये हैं। पर उसकी गैरहाजिरी में जालपा ने छै सौ रुपये रतन को दे दिये। रमा-नाथ को जब यह मालूम हुआ, तो उसने बहुत हाथ-पैर पटके कि रुपयों का प्रबन्ध हो जाय, और वह दफ्तर की आमदनी खजाने में दाखिल कर दे। पर वह सफल न हो सका। लाचार होकर उसने जालपा के नाम एक पत्र लिखकर अपनी जेब में

रखा। वह सोच ही रहा था कि उसे जालपा को दे या न दे, पर इसी बीच वह जालपा के हाथों में पड़ गया। रमानाथ यह देखकर घर से भाग गया, और रेल में बैठकर कलकत्ता जा पहुंचा। जालपा पत्र पढ़कर सारी परिस्थिति समझ गई। उसने अपने आभूषणों को बंधक रखा, और रकम को खजाने में दाखिल कर दिया।

रास्ते में रमानाथ की भेंट देवीदीन नामक एक वृद्ध खटिक से हुई थी। वह उसीके साथ वहां पहुंचा, और वहां दिन गुजार रहा था। कलकत्ता में उसने अपना परिचय ब्राह्मण करके दिया था। देवीदीन की बुढ़िया उससे कुढ़ती थी, वहां भी उसे हरदम पुलिस का भय बना रहता, और दूर से पुलिस वालों को आता देखकर उसके हाथ-पैर कांपने लगते थे, इस प्रकार कई दिन बीत गये, और ठंड आ गई। ठंड के लिए उसके पास कपड़े तो थे नहीं। अतएव वह एक दिन एक सेठ से दान में मिले कंबल को ले आया। देवीदीन ने इस पर कहा—'सेठ की जूट की मिल है। मजदूरों के साथ जितनी निर्दयता इसके मिल में होती है, और कहीं नहीं होती। आदमियों को हंटरों से पिटवाता है, हंटरों से। चर्बी मिला घी बेचकर इसने लाखों कमा लिया, कोई नौकर एक मिनट की भी देर करे, तो तुरन्त तलब कर लेता है। अगर साल में दो-चार हजार का दान न कर दे तो पाप का धन कैसे पचाये।'

देवीदीन और रमानाथ में घनिष्ठता बढ़ती गई, और उसने रमानाथ से उसके भागने का सारा हाल जान लिया। सारा हाल जानकर वह रमानाथ को घर लौट जाने के लिए समझाने लगा। एक बार जब वह जाने के लिए राजी हुआ तो उसने रमा नाथ के लिए स्वदेशी कपड़े खरीदे। इन कपड़ों के पीछे भी एव

भी वहां पहुंची, और उसने भी कड़े शब्दों में उसके कृत्य की भर्त्सना की।

यह देखकर वह अपना बयान बदलने के लिये जज के पास गया। पर रास्ते में ही उसे अपने परिचित दारोगा मिल गये। उन्हें यह बात मालूम हो गई, और उस पर फिर से चौकसी रखी जाने लगी। रमा के मनोरंजन के लिये एक वेश्या जोहरा उसके पास लाई जाती थी। उसे रमा से कुछ-कुछ अनुराग हो चला। इसी बीच रमा ने मोटर में घूमते समय हावड़ा ब्रिज के पास सिर पर कलश रखे जालपा को देखा। वह बहुत दुबली हो गई थी। सैर से जब वापिस आया, तो जोहरा आई। रमा को अन्यमनस्क पाकर उसने कारण पूछा। रमा के कारण बताने पर उसने वादा किया कि वह जालपा का पता लगायेगी। कई दिनों के बाद रमानाथ को उसके द्वारा विदित हुआ कि जालपा दिनेश के घर में रह कर उसके असहाय परिवार की सहायता कर रही है। अब की बार रमा ने हिम्मत से काम लिया, और जज से सारी बातें साफ-साफ कह दीं। मुकदमे की जांच फिर से हुई। पुलिस की तरफ से बहुत दबाव डाला गया कि ऐसा न हो। पर अंत में सब-के-सब अभियुक्त साफ बरी हो गये। इसका नतीजा दारोगा और नायब दारोगा को भुगतना पड़ा और उनकी तनज्जुली हो गई।

इसके उपरांत तीन वर्ष व्यतीत हो गये। देवीदीन ने जमीन खरीदी, खेती जमाई, पशु खरीदे और बगीचा लगाया। उसके साथ रमानाथ, जालपा, रतन, जोहरा सभी आ गये। दयानाथ भी नौकरी से बर्खास्त होने पर वहां पहुंचे, और सब-के-सब गांव वालों की सेवा कर आदर्श जीवन व्यतीत करने लगे। यहां रतन की मृत्यु हो गई। उसकी त्यु के बाद सब लोग बरसात

के दिनों में नदी के किनारे बैठे थे कि एकाएक एक नाव उलट गई। उनके सब यात्री डूब गये। केवल एक स्त्री और उसके साथ एक बच्चा किनारे के पास दृष्टिगोचर हुआ। जोहरा उसे बचाने के लिये नदी में कूदी, पर स्वयं लहरों में फंसा गई।

भी वहां पहुंची, और इसने भी कड़े शब्दों में इसकी भर्त्सना की।

यह देखकर वह अपना बयान बदलने के लिये पास गया। पर रास्ते में ही उसे अपने परिचित [illegible] गये। उन्हें यह बात मालूम हो गई, और उस पर चौकसी रखी जाने लगी। रमा के मनोरंजन के लिये एक जोहरा उसके पास लाई जाती थी। उसे रमा से कुछ-कु[illegible] हो चला। इसी बीच रमा ने मोटर में घूमते समय [illegible] पर कलश रखे जालपा को देखा। [illegible] हैसयत के प्रदर्शन के [illegible] या, तो जोहरा [illegible] डाक्टर रामविलास शर्मा आदि कुछ लेखकों ने इसे [illegible] को स्त्रियों के गहनों के प्रति प्रेम के कारण उत्पन्न समस्याओं को लेकर लिखा हुआ बतलाया है, पर यह केवल असली समस्या का एक हिस्सा मात्र है।

धनी समझे जाने की इच्छा

यहां इस समाज में प्रत्येक व्यक्ति यही चाहता है कि वह धनी समझा जाय, इस कारण रमानाथ के ऐसे लोग अपनी स्त्री तक से असली बात न बताकर जीह हांकते रहते हैं। स्त्रियां भी इसी कारण अलंकारों के प्रति मोहग्रस्त हैं। वे चाहती हैं कि वे जितने बड़े घर की नहीं हैं, उससे बड़े घर की समझी जायं। इसी कारण यह मोह है। इसके लिये केवल स्त्रियों को दोष देना उचित न होगा। ढोंग और ढकोसलामूलक समाज ही इस प्रकार की कमजोरियों के लिये जिम्मेदार है। यदि व्यक्ति अपने मूल्य पर कूते जाते तो न तो रमानाथ गबन करता, और न जालपा उसे गबन करने के पथ पर ले जाती।

के दिनों में नदी के किनारे बैठे थे कि एकाएक एक नाव उलट गई। उसके सब यात्री डूब गये। केवल एक स्त्री और उसके साथ एक बच्चा किनारे के पास दृष्टिगोचर हुआ। जोहरा उसे बचाने के लिये नदी में कूदी, पर स्वयं लहरों में समा गई।

लोचकों ने उसे जितनी दोषी बतलाया है, वह उतनी दोषी नहीं है। उसे यदि मालूम होता कि रमानाथ की वास्तविक आर्थिक दशा क्या है, तो वह किसी भी हालत में गहने नहीं मांगती, और न पति को ग़बन के रास्ते पर ले जाती। यह इस बात से ज्ञात है कि जब रमानाथ चिट्ठी लिखकर चला जाता है, तो वह फौरन अपने आभूषणों को गिरवी रखकर उसके दफ्तर में आवश्यक रुपये जमा कर देती है। बाद को वह बराबर कोशिश करती है कि रमानाथ गलत रास्ते से हटे, और सही रास्ते पर चले। सच तो यह है कि उसी के उदाहरण तथा प्रभाव से रमानाथ अंत तक राहरास्ते पर आता है।

देवीदीन का उज्वल चरित्र

देवीदीन बाबू वर्ग का तो नहीं है, पर वह है इसी समाज का। उसका चरित्र बहुत उज्वल है। वह रमानाथ को शरणागत जानकर आश्रय देता है, फिर हर तरीके से उसकी भलाई

करता है। उसके लिये यह सबसे बड़ी प्रशंसा की बात है कि उस के दो-दो बेटे देश की बलिवेदी पर चढ़ चुके हैं, उसे व्यक्तिगत रूप से इस बात से प्रत्येक अर्थ में नुकसान ही रहा, पर वह फिर भी भलाई करने से चूकता नहीं है। वह राजनैतिक रूप से जागरूक है। वह उन नेताओं की पोल को बहुत अच्छी तरह समझता है जो दूसरों के लड़कों को बलिवेदी पर चढ़ाकर खुद मौज उड़ाते हैं या त्याग भी करते हैं तो हिसाब लगाकर करते हैं। हम देवीदीन को एक आदर्श गृहस्थ के रूप में ले सकते हैं।

जोहरा का ऊपर उठना

जोहरा एक वेश्या है, पर वह इस बात का सुन्दर प्रमाण है कि किस प्रकार मौका मिलने पर वेश्याएं न केवल अपनी पतित अवस्था से उठ सकती हैं, बल्कि यहां तक महान हो सकती हैं कि दूसरों को बचाने के लिये अपनी जान दे दें। अवश्य इस प्रकार जोहरा को मरवाकर प्रेमचंद इस अद्भुत परिस्थिति से अपने कथानक को निकाल लेते हैं कि जोहरा भी रमानाथ को प्रेम करती है, और जालपा तो है ही।

सुग्रथित उपन्यास

इस उपन्यास का कथानक बहुत कुछ सुग्रथित है। रमानाथ के कलकत्ता जाने तक तो वह बहुत ही सुन्दर रहता है। और उसमें एक भी ऊलजलूल बात नहीं आ पाती। इस उपन्यास में फिर भी कथानक संबंधी कई त्रुटियां हैं जैसे मुखबिर के हाथ में पिस्तौल दिखाई जाती है, पर फिर भी इसमें संदेह नहीं कि गबन प्रेमचंद के उपन्यासों में केवल मध्यवित्त समाज की स्थिति को दिखलाने वाला एक ही उपन्यास है।

कर्मभूमि

लाला समरकांत बनारस के बहुत बड़े व्यापारी थे। उनका पुत्र अमरकांत उनकी कृपा से वंचित था, और अपनी फीस भी ठीक समय पर नहीं दे सकता था। उसका दोस्त सलीम ऐसे मौकों पर उसकी फीस अदा कर देता था। अमरकांत की मां की मृत्यु हो चुकी थी। उसकी मृत्यु के बाद उन्होंने दूसरा विवाह किया था। दूसरी पत्नी से उनके नैना नाम की कन्या भी हुई। उनकी दूसरी पत्नी की भी मृत्यु हो चुकी थी। अमरकांत शरीर से कमजोर था, तथा पढ़ने-लिखने में भी कमजोर था। लाला जी ने सूना घर देखकर उसकी शादी सुखदा से कर दी। सुखदा बहुत बड़ी जायदाद की उत्तराधिकारिणी थी।

अमरकांत को चर्खा चलाने का शौक था, और वह अक्सर सभा आदि में भी जाता था। उसकी स्त्री और पिता को उसका यह रवैया बिलकुल पसंद नहीं था। वे हरदम उसके चर्खा पर व्यंग्य कसते। इसके फलस्वरूप अमरकांत ने यह दिखाने का इरादा किया कि वह पढ़ाई में किसी से पीछे नहीं है, और उसने मैट्रिक की परीक्षा में सारे प्रांत में प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसी समय अमरकांत की सास रेणुका काशी में आई, और गंगा-तट पर ठाठ से रहने लगी। अमरकांत का अधिकांश अवकाश का समय उसी के पास बीतता था।

पर अमरकांत ने अपना पुराना जीवन-क्रम कायम रखा, और वह जब-तब सलीम, डाक्टर शांतिकुमार तथा अन्य मित्रों

के साथ ग्रामसेवा के लिये निकल जाया करता था। एक दिन वे इसी प्रकार गांव में गये हुये थे तो उन्होंने देखा कि एक जगह, गोरे गांव की एक स्त्री का अपमान कर रहे हैं। बस वे लोग उन पर पिल पड़े। एक गोरे ने पिस्तौल चलाई, शांतिकुमार को कुछ चोट आई, पर गोरे काबू में आ गये।

अब तो अमरकांत राजनैतिक कामों में अधिक पड़ने लगा, पर सुखदा ने उससे प्रतिज्ञा कराई कि वह राजनैतिक कामों में नहीं पड़ेगा। तब उसे राजनैतिक काम छोड़ना पड़ा। कभी-कभी दूकान में भी बैठने लगा। एक दिन दूकान पर बैठा था तो काले-खां नामक गुंडा से यह मालूम हुआ कि उसके पिता चोरी के माल खरीदा करते हैं। उसे यह भी मालूम हुआ कि उसके पिता एक मुसलमान बुढ़िया को पांच रुपया हर महीना देते हैं। वह इस बुढ़िया के घर भी गया तो वहां उसकी पोती नवयुवती सकीना से उसकी जान-पहचान हुई। सकीना रुमाल काढ़ा करती थी, अमरकांत उन्हें मित्रों में बेचने लगे।

जब लाला समरकांत को यह ज्ञात हुआ कि अमरकांत ने कालेखां से चोरी का माल नहीं लिया, तो उसने उसे खूब डांटा, बोला—कौन रोजगार है जिसमें आत्मा की हत्या न होती हो। सभी रोजगारों में दांवघात हैं। कौन वकील है जो झूठे गवाह नहीं बनाता। लीडरों में ही कौन है जो चंदे का रुपया नोच-खसोट न करता हो—पर अमरकांत ने कुछ नहीं सुना।

लाला समरकांत की दूकान के सामने ही एक भिखमंगिन ने एक गोरे पर छुरी से हमला किया। छुरी छाती में घुस गई। पूछताछ करने पर मालूम हुआ कि यह वही स्त्री थी, जिसका गोरों ने उस अवसर पर अपमान किया था। तब से वह पगली-सी थी। वह गिरफ्तार कर ली गई; और उस पर मुकदमा चला। अमर-

कांत तथा उसके मित्रगण जोरों के साथ उसकी पैरवी करने लगे। फैसले के दिन उस स्त्री का पति एक बच्चे को गोद में लेकर अदालत में आया। मालूम हुआ कि उसे अब बिरादरी का भय नहीं है, यदि वह स्त्री छूट गई, तो वह उसे ग्रहण करेगा।

वह स्त्री जिसका नाम मुन्नी था, बरी कर दी गई। मुन्नी को बताया गया कि उसका पति उसे ले जाने को तैयार है, पर वह पति के साथ यह कह कर मिलने को तैयार नहीं हुई कि वह अपने स्वार्थ के लिये उसका तथा बच्चे का सत्यानाश नहीं करना चाहती, कहकर वह कहीं चली गई।

अमरकांत अब भी मुसलमान बुढ़िया के यहां जाता था। एक दिन वह पहुंचा तो बुढ़िया घर में नहीं थी। घर में अंधेरा था। पूछने पर मालूम हुआ कि एक ही साड़ी है, उसे धोकर डाल दिया है, इसलिये वह नंगी है, और तभी बत्ती जलाई नहीं गई। इस बात से अमरकांत जोश में आ गया, और तुरंत घर जाकर वहां से चार साड़ियां ले आया। सकीना ने मना किया, और उससे कहा कि आप ज्यादा आया न करें, लोग शक करेंगे। उसने साड़ियों को लेने से भी इन्कार कर दिया।

थोड़े दिन में अमरकांत ने यह समझ लिया कि सकीना के प्रति उसमें प्रेम उत्पन्न हो चुका है। इन्हीं दिनों सकीना की शादी की बातचीत हुई तो वह उन्मत्त सा हो गया, और उसने तभी दम ली जब सकीना से वादा करवा लिया कि वह अभी शादी नहीं करेगी।

अमरकांत म्युनिसपलिटी के मेंबर हो गये थे, पर समरकांत चाहते थे कि वह इन सब बखेड़ों में न पड़कर पूरा समय दूकान में दे। इसीको लेकर पिता-पुत्र में चखचख हुई, और अमरकांत को बालबच्चों के साथ घर छोड़ना पड़ा। नैना भी साथ गई।

जीविका के लिए वह खद्दर की फेरी करने लगा। घर का सारा भार नौकरानियों के बजाय सुखदा पर पड़ा। इस कारण थोड़े ही दिनों में पति-पत्नी में खटपट रहने लगी। सुखदा ने बालिका विद्यालय में नौकरी कर ली। नतीजा यह हुआ कि घर का भार भी अमरकांत पर पड़ा। इधर समरकांत की भी हालत अच्छी नहीं थी। नौकरों के हाथ से खाना खाते खाते वे बीमार हो गये। सुखदा रोज वहां जाने लगी, और उनकी सेवा करने लगी। सुखदा को पति के फेरी करने पर बहुत शर्म आती थी। एक दिन उसने खुलकर कहा तो अमरकांत बोला—तुम्हारी नौकरी करने से भी तो मेरा अपमान होता है। दोनों में खटपट लगी ही रहती थी।

अमरकांत सकीना के यहां बहुत जाते थे। वह पत्नी के रूप में सकीना को चाहता था, पर इसके लिए ढंग न देखकर भटकता हुआ देहात में पहुंचा, और एक चमारों के गांव में ग्रामसुधार करने लगा। मुन्नी भी वहीं थी। उसने वहां एक पाठशाला खोल दी। वह वहां मजे में रहता था। इतने में एक दिन मालूम हुआ कि कहीं पास में कोई गाय मरी है, और सब गांववाले वहां मांस लेने गये हैं। इस पर उसने मुन्नी से कहा कि अब न तो यहां खायगा, और रहेगा। मुन्नी ने जाकर लोगों को समझाया पर वे न माने। तब मुन्नी गाय के सामने खुद बैठ गई, और बोली जिसे मुर्दा मांस लेना है, वह पहले मुझ पर छुरी चलावे। इस पर गांव वाले मान गये। अमरकांत वहीं रह गया।

उधर समरकांत अपने ठाकुरद्वार में एक ब्रह्मचारी से कथा कहलवाते थे। पर एक दिन ब्रह्मचारी जी को मालूम हुआ कि कुछ अछूत भी वहां कथा सुनने आते हैं। तब वे बिगड़ गये। शांतिकुमार ने अछूतों का पक्ष लिया। वे अछूतों से बोले—"तुम्हें

इतनी भी खबर नहीं कि यहां सेठ महाजनों के भगवान रहते हैं। तुम्हारे भगवान किसी झोंपड़ी में या पेड़ तले होंगे। ये चिथड़ा पहनने वाले और चबेना खाने वालों को सूरत तक नहीं देखना चाहते।" अछूतों पर रोक लगा दी गई। पर अछूत नहीं माने। एक दिन तो गोली भी चल गई। अछूत भागने लगे, तो सुखदा सामने आकर अछूतों को समझाने लगी कि पीछे मत हटो। उधर गोली चलना ही चाहती थी कि लाला समरकांत ने पुलिस वालों को कह दिया कि मंदिर खुल गया, जिसका जी चाहे प्रवेश कर सकता है। कई लोग मारे गये थे। शांतिकुमार को भी चोट आई थी। उनको देखने के लिए नैना और सुखदा जाया करती थीं।

सलीम आई. सी. एस. में पास हो गया, और उसे उस हल्के का चार्ज मिला जहां अमरकांत पहले ही से मौजूद थे। नैना का विवाह सेठ धनीराम के पुत्र मनीराम से हुआ। सुखदा अब सेवाकार्य में ही रहती थी। शांतिकुमार के साथ मिलकर वह चाहती थी कि लोगों के लिए सस्ते मकानों का प्रबन्ध हो, पर म्युनिसिपलिटी वाले इस पर तैयार नहीं हुए, तब हड़ताल की गई, और इसमें सुखदा जेल चली गई।

इधर अमरकांत को जब सलीम की नियुक्ति की बात ज्ञात हुई, तो वह उससे मिला। वहां उसे पता लगा कि सलीम सकीना से प्रेम करने लगा है, पर यहां सोचने का समय न था। उस इलाके के जमींदार महंतजी बहुत अत्याचारी थे। अमरकांत के नेतृत्व में लगानबंदी शुरू हुई, तो जिला मजिस्ट्रेट मिस्टर गजनवी ने सलीम को हुकम दिया कि वह अमरकांत को गिरफ्तार करे। अमरकांत गिरफ्तार हो गया। उस अवसर पर दंगा होते-होते बचा। लाला समरकांत को जब पुत्र की गिरफ्तारी

की बात मालूम हुई, तो वे उस इलाके में पहुंचे। लालाजी पर भी हंटर चलने ही वाला था कि सलीम ने उन्हें पहचान लिया। सलीम बहुत लज्जित हुआ। लाला तो चले गए, पर सलीम ने जांच शुरू की, और उसे मालूम हुआ कि किसानों की हालत सचमुच बड़ी खराब है।

अमर की जेल में कालेखां भी था। कालेखां उसका काम-काम कर दिया करता था, और उसे आराम देता था। पर कालेखां एक दिन नमाज़ पढ़ रहा था, तो उस समय जेलर आया। कालेखां नमाज में ही लगा रहा। इस पर उसे पीटा जाने लगा, और वह अगले दिन मर गया।

इस समय तक सलीम अपनी जांच समाप्त कर चुका था, और उसने सरकार को किसानों की सच्ची हालत की एक रिपोर्ट दी। गज़नवी ने बहुत मना किया कि ऐसी रिपोर्ट मत दो, पर उसने रिपोर्ट दी। नतीजा यह हुआ कि उसे बर्खास्त कर दिया गया। सलीम किसानों में काम करने लगा। अन्त तक सलीम गिरफ्तार हो गये, और उसी जेल में पहुंचाये गये जहां अमरकांत था।

बनारस में भी गिरफ्तारियां हो रही थीं। नैना भी आंदोलन में थी। मनीराम ने उसे समझाया, पर जब वह न मानी, तो उसने उस पर गोली चला दी। सुखदा, सकीना, पठानिन, मुन्नी, रेणुका सब जेल में ही थीं। इसी कारण नैना को नेतृत्व लेना पड़ा था।

जनाने जेल की पुताई के लिये जो मजदूर भेजे गये इनमें अमरकांत और सलीम भी थे। इतने में सबकी रिहाई की खबर आई। सेठ समरकांत भी आये थे। अमर ने सुखदा से माफी मांगी। सलीम और सकीना की शादी तय हो गई। सरकार झुक

कर्मभूमि पर विचार

सामाजिक राजनैतिक उपन्यास

यह उपन्यास स्पष्ट रूप से एक सामाजिक राजनैतिक उपन्यास है। इसमें प्रेमचंद एक साथ कई समस्याओं को उठाते हैं, जैसे जमींदार किसान, अछूतोद्धार तथा मन्दिर प्रवेश, म्युनिसिपलिटी और सस्ते मकान। साथ ही साथ बहुत से पारिवारिक प्रश्न भी हमारे सामने आते हैं, जैसे गरीबी आने पर पति-पत्नी का सम्बन्ध, स्त्री को अपने कार्य में कितनी स्वतंत्रता है। शेषोक्त प्रश्न नैना के सम्बन्ध में उठता है। पिता पुत्र के संबंध पर भी रोशनी डाली जाती है।

प्रेम कहानी भी है

इन समस्याओं का पुट आ जाने से इस उपन्यास की मर्यादा बहुत बढ़ गई है। पर यह न समझा जाय कि इसमें केवल समस्यायें ही हैं। अमरकांत और सकीना की कहानी एक प्रेम-कहानी है। वह काफी रोमैंटिक तरीके से लिखी गई है। नैना और शांतिकुमार का प्रेम उतना स्पष्ट नहीं है। इस उपन्यास में सत्याग्रह, जेलयात्रा, गोरों पर मार आदि के रूप में अन्य रोमैंटिक उपादान भी यथेष्ट मात्रा में हैं, और बहुत कुछ हद तक प्रेमचंद इन सबको शिथिल तरीके से पिरोने में समर्थ हुए हैं।

अछूत-समस्या

यों तो उन्होंने अपने अन्य कई उपन्यासों में किसानों की

समस्या उठाई है, पर इसमें अछूतों की समस्या उठाई गई है। यह उस ज़माने में लोगों के सामने एक अनिवार्य समस्या के रूप में आ चुकी थी। इससे यह स्वाभाविक ही था कि प्रेमचंद ने अपने उपन्यास में इस समस्या को भी ला दिया।

इस उपन्यास के दोनों रूप

अछूत समस्या के जो दो रूप हैं याने एक गांव के अछूतों की समस्या तथा शहरों के अछूतों की समस्या। इन दोनों का प्रेमचंद ने बहुत सुन्दर दिग्दर्शन कराया है। गांव के अछूतों की समस्या के अंदर किसान-ज़मींदार की समस्या आती है। प्रेमचंद ने इस पहलू को अच्छी तरह देखा था, इसीलिये वह इन दो समस्याओं की एकरूपता का चित्रण कर सके। शहर के अछूतों की समस्या में उनका आर्थिक शोषण आ जाता है, पर उनके नागरिक अधिकार वाला अंश ही याने दूसरे शब्दों में उनकी नागरिक अधिकारहीनता ही अधिक सामने आती है। प्रेमचंद के लिये यह बहुत सफलता की बात है कि उन्होंने अछूत समस्या की इन भीतरी बातों का अपने इस उपन्यास में सुन्दर चित्रण किया है।

जेल पद्धति पर छींटे

जेल में काले खां को जिस तरह मार डाला गया, उससे प्रेमचंद ने अपने नियम के अनुसार जेल तथा पुलिस पद्धतियों की पोल दिखलाई है। साथ ही इस रूप में वे ब्रिटिश सरकार की नग्नता तथा उसके अन्यायी चरित्र को भी स्पष्ट कर देती हैं।

व्यापारी वर्ग

उन्होंने इस उपन्यास में व्यापारी वर्ग के चरित्र का भी सुन्दर उद्घाटन किया है। लाला समरकांत जिस प्रकार साफ़-

साफ यह कहते हैं कि बेईमानी के बगैर न तो व्यापार हो सकता है और न अन्य कोई पेशा चल सकता है, यह कथन बहुत कुछ सत्य होने के कारण व्यापारी वर्ग में कहीं अधिक दूर तक मार करता है। यह प्रचलित पद्धति के खोखलेपन को स्पष्ट करता है।

सुखदा

सुखदा जब यह कहती है कि उसे इस बात में शर्म आती है कि उसका पति अमरकांत खद्दर की फेरी करता है, तो वह केवल अपनी बात नहीं कह रही है, बल्कि इस प्रकार की सब स्त्रियों की तरफ से बोल रही है। इसी प्रकार जब अमरकांत इसके जवाब में यह कहता है कि कि उ। शर्म आती है कि वह स्कूल में पढ़ाती है, तो वह भी अपनी ही तरह के पुरुषों की तरफ से बोल रहा है। सुखदा अपने फेरी वाले पति से तो घृणा करती है, पर चोरी के माल खरीदने वाले धनी ससुर साहब की सेवा के लिये उन्मुख रहती है, यह भी इसी रोग का एक दूसरा लक्षण है। इस समाज में किसी की कद्र उसके गुणावगुण के कारण नहीं है, बल्कि उसके रुपयों के कारण है। प्रेमचंद स्वयं अपने जीवन में इस सत्य को बार-बार प्रत्यक्ष कर चुके थे, इस कारण उन्होंने इसका इतना हूबहू चित्रण किया है।

इन्हीं में अच्छे उपादान भी हैं

पर ऊपर जो कुछ कहा गया, उसमें इस प्रकार के लोगों के प्रति प्रेमचंद का तिरस्कार स्पष्ट होने पर भी, उनके मन में न तो निराशा है और न कडुवापन है। वे दिखलाते हैं कि यद्यपि ये व्यक्ति भीतर से इस प्रकार खोखले तथा अंतःसार-हीन हैं, फिर भी इन्हीं में से वह उपादान निकलता है जो समय

अमरकांत अजीब हवा में उड़ने वाला पात्र है। कभी तो वह बाप से इस कारण लड़ जाता है कि उनकी कमाई ईमानदारी की नहीं है, पर आगे चलकर वह अपनी पहली स्त्री के मौजूद होते हुए सकीना से प्रेम निवेदन करता फिरता है। अंत की ओर वह जो कुछ समाज सेवा करता है, वह बहुत कुछ इस जगत से निराश होकर एक गांव में जाकर बसने के बाद करता है।

सुखदा कब समाजसेविका बनी

सुखदा भी उसी समय समाजसेविका बनती है, जब

उसका पति उससे ऊबकर घर छोड़कर चला जाता है। अवश्य इससे उसकी समाज-सेवा का मूल्य कुछ भी नहीं है, ऐसा नहीं कहा जा सकता।

सकीना का चरित्र स्पष्ट नहीं

सकीना का पूरा चरित्र स्पष्ट नहीं हो पाता। वह बहुत कुछ परिस्थितियों से इतनी बदल जाती है कि समझ में नहीं आता कि क्यों इतनी बदली। पहले उसका एक ब्याह तय होता है, फिर अमरकांत के अनुरोध पर वह उस विवाह से हाथ खींच लेती है, इससे तो यही निष्कर्ष निकलता है कि वह अमरकांत से प्रेम रखती है। अंत तक सलीम से उसका विवाह होता है। यह अन्तिम परिवर्तन शायद दो कारणों से होता है—एक तो अमरकांत की स्त्री की मौजूदगी, दूसरा धार्मिक खाई के कारण अमरकांत से विवाह की असम्भवता। पर इन बातों को प्रेमचंद स्पष्ट नहीं करते, नतीजा यह है कि सकीना का चरित्र अजीब त्रुटिपूर्ण मालूम होता है।

सलीम का मनोवैज्ञानिक पहलू

सलीम का जिस तरह परिवर्तन दिखलाया गया है, उससे वह एक उच्च चरित्र युवक मालूम होता है, पर उसके परिवर्तन के लिये, जो और जितना कारण दिखलाया गया है, वह अक्सर मनोवैज्ञानिक रूप से अयथेष्ट है।

लाला समरकांत अपने लड़के के कारण जिस प्रकार एक छटे हुए बेईमान व्यापारी से अपेक्षाकृत सामाजिक भावयुक्त भले आदमी बन जाते हैं, वह काफी सफलतापूर्वक दिखलाया गया है। राष्ट्रीय आन्दोलनों में बहुत से लोगों के चरित्रों में ऐसे परिवर्तन हुए हैं।

गोदान

होरी चार-पांच बीघे जमीन को जोतने वाला एक मामूली किसान है। उसकी छै संतानों में से तीन लड़के बाल्यावस्था में ही बिना उपचार के मर गये। अब उसके एक नौजवान पुत्र गोबर और दो लड़कियां रूपा और सोना हैं। रूपा की उम्र बारह साल और सोना की अवस्था आठ साल है। होरी कभी-कभी अपने जमींदार राय साहब के पास सलाम करने चला जाता था। इसका केवल इतना ही लाभ होता था कि गांव वाले उसका आदर करते थे।

होरी की तीव्र इच्छा थी कि उसके द्वार पर एक गाय बंधी हो। जब राय साहब के यहां जा रहा था, तो राह में उसकी मुलाकात अपने पड़ोस के गांव के एक भोला नामक ग्वाले से हुई। भोला विधुर था, और उसके मन में दूसरी शादी करने की इच्छा थी। होरी ने भोला से विवाह का वादा किया, और भोला ने उसे एक दुधारू गाय उधार देना मंजूर किया। जब होरी को यह मालूम हुआ कि भोला के पास भूसा नहीं है, तो उसने उसे दस-पांच मन भूसा मुफ्त देने का वचन दिया।

होरी के जमींदार रायसाहब अमरपाल सिंह कांग्रेसी थे। वे पिछले सत्याग्रह आंदोलन के सिलसिले में कौंसिल की सदस्यता को त्यागकर जेल गये थे। इसलिए वे किसानों की नजरों में ऊंचे उठ गये थे। पर अभी तक उनके वहां का सारा कारोबार पूर्ववत: था। असामियों पर उसी तरह कड़ाई से शासन

लिया जाता था, और असामियों से इसी प्रकार वसूल किया जाता था। डालियाँ, नजराना आदि का रुपया भी इसी तरह वसूल किया जाता था। रायसाहब को ७०,०००) रु० असामियों से वसूल करना था। इस सिलसिले में उन्होंने होरी से कहा—"हम भी दान देते हैं, धर्म करते हैं, लेकिन जानते हो क्यों? अपने बराबर वालों को नीचा दिखाने के लिए। हमारा दान और धर्म कोरा अहंकार है, विशुद्ध अहंकार। . . . मामूली ज्वर भी आ जाय तो हमें सरसाम की दवा दी जाती है, मामूली फुंसी भी निकल आये तो वह जहरबाद बन जाती है। जब छोटे सर्जन और बड़े सर्जन तार से बुलाये जा रहे हैं, मनोहर मुजरा को नाचने के लिए दिल्ली आदमी जा रहा है, और भिखारिणी को लाने के लिये कलकत्ता। . . . साहब शिकार खेलने आयें या दौरे पर, मेरा कर्तव्य है कि उनकी दुम के पीछे लगा रहूं। उनकी भौंहों पर शिकन पड़ी, और हमारे प्राण सूखे........पिट्ठुओं की खुशामद ने हमें इतना अभिमानी और तुनक मिजाज बना दिया है कि हममें शील और विनय का लोप हो गया है।"

होरी का लड़का गोबर नौजवान था, और उसके खून में जोश था। वह नहीं चाहता था कि होरी नियमपूर्वक रायसाहब जैसों की चापलूसी करने जाय। इस पर होरी उससे कहता कि हमारी गर्दन दूसरे के पैरों के नीचे दबी हुई है, अकड़ कर निबाह नहीं हो सकता। जमींदार के साथ ही साथ साहूकार भी निरंतर किसानों के रक्त को चूसा करता है। साहूकार दुगुना-तिगुना सूद वसूल करता है, और ऋण के भार से किसान इतना लद जाता है कि वह अपने जीवन में तो उस भार से मुक्त नहीं हो सकता।

साथ गांव के सब मुखियों की खबर ली। नतीजा यह हुआ कि दारोगा को होरी से रुपये नहीं मिल सके, और उन्होंने अपना गुस्सा गांव के मुखियों पर निकाला।

इधर हीरा गायब हो गया। उसके गायब हो जाने पर होरी ने रात-रातभर काम करके हीरा के खेत में धान रोपे। इसी बीच गर्भवती झुनिया होरी के यहां आ गई। पहले तो होरी और धनिया दोनों उस पर क्रुद्ध हुए, पर बाद में उसे आश्रय मिल गया। गोबर लापता हो गया। गांववालों ने होरी के यहां झुनिया को देखकर रोष प्रगट किया, पर धनिया के भय से सब चुप रहते थे। अन्त में पंचायत बैठी, और मुखियों ने होरी पर सौ रुपये का तावान लगा दिया। धनिया ने तो विरोध किया, पर होरी ने-सब गल्ला उठा कर दे दिया। राय साहब को जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने पंचों से तावान के रुपये वसूल कर लिये। पंचों ने गुमनाम पत्र से राय साहब की ज्यादती की सूचना 'बिजली' पत्र के सम्पादक ओंकारनाथ को दी। ओंकारनाथ ने इस सूचना की सत्यता ता पता लगाने के लिये राय साहब से पूछताछ की। बहुत बहस और जली-कटी सुनने-सुनाने के बाद रायसाहब ने १५००) रु० देकर पत्र के सौ फ्री ग्राहक बनाये, और मामला रफा-दफा किया।

गोबर भागकर शहर पहुंचा, और वहां रहने लगा। पहले तो उसने मजदूरी की, पर फिर पैसे जोड़कर वह कचालू, मटर और दही-बड़े के खोंचे लगाने लगा। वह दूसरे शहर वालों का अनुकरण करने लगा, और पूरा शहराती बनकर उसी ढंग से रहने लगा। थोड़े दिनों के बाद वह झुनिया को लिवाने अपने गांव आया। इस बीच होरी की हालत बहुत गिर गई थी, और वह मजदूरी करके अपने दिन गुजार रहा था। जी तोड़ परि-

श्रम करने से वह काफी कमजोर हो गया था। इसके साथ ही ऋण की चिन्ता भी उसे जलाती रहती थी।

गांव के कारिंदा चोखेलाल ने हर साल लगान लेते हुए भी कह दिया कि दो साल से होरी ने लगान नहीं दिया। गोबर ने यह रंग-ढंग देखकर सब ठीक करना चाहा। उसने चोखेलाल से मनवा लिया कि लगान बराबर चुकाया गया है। वह ब्राह्मण साहूकार दातादीन का भी कर्ज अदा करना चाहता था, और वाजिब रुपये देना चाहता था, पर दातादीन तो छः साल में तीस रुपये के दो सौ रुपये बना चुके थे। इसी बात पर होरी और गोबर में मतभेद हो गया, और बात बढ़ गई। धनिया बीच में पड़ी, पर उसे भी गोबर ने खरी-खरी सुना दी। धनिया ने सारा दोष झुनिया के सिर पर मढ़ दिया। नतीजा यह हुआ कि गोबर नाराज होकर अपनी पत्नी झुनिया और बच्चे को लेकर शहर चला गया।

शहर में राय साहब की कन्या के विवाह की बातचीत हो रही थी। वे चुनाव लड़ने जा रहे थे। इस बार राय साहब के खिलाफ एक राजा साहब चुनाव में खड़े हुए थे। उन्होंने कहा था कि चाहे उनकी पचास लाख की जायदाद मिट जाय, पर वे राय साहब को कौंसिल में न जाने देंगे। इसी अवसर पर मिस्टर तन्खा नामक एक व्यक्ति चुनाव विशेषज्ञ के रूप में सामने आता है, और अपना उल्लू सीधा करता है। इस सिलसिले में मालती नामक एक बहुत पढ़ी-लिखी डाक्टर भी स्त्रियों की नेत्री के रूप में आती है। उसमें अनेक गुण हैं, पर उनमें सबसे बड़ा गुण या अवगुण यह है कि वह लोगों को बेवकूफ बनाने की कला में निपुण है। मालती पर शहर के उद्योगपति मिस्टर खन्ना बुरी तरह रीझे हैं, वे अपनी पत्नी गोविंदी के साथ दुर्व्यवहार करते

हैं। एक दिन गोबिन्दी घर से यह कहकर निकल भी जाती है कि दस-बीस रुपये कमा लेना क्या मुश्किल है, अपने पसीने की कमाई खाऊंगी। फिर तो तुम पर कोई दोष नहीं लगायेगा।

होरी कभी-कभी गांव की सहुवाइन दुलारी से हंसी-दिल्लगी भी कर लेता है। बाद में होरी ने सोना की शादी के लिये इसी सहुवाइन से दो सौ रुपये कर्ज में लेने का इरादा किया।

इधर गांव के मुखिया और साहूकार पंडित दातादीन के पुत्र मातादीन ने सिलिया नाम की एक चमारिन को रख लिया। दातादीन उससे मजदूरिन का काम भी लेते थे। चमारों को यह मंजूर नहीं था। जब दातादीन खलिहान में अपने पुत्र के साथ बैठे थे और सिलिया काम कर रही थी, उस समय चमारों ने मातादीन को पकड़ लिया, और उसके मुंह में एक बड़ी-सी हड्डी डाल दी। उन्होंने सिलिया को भी ले चलने के लिये उसे मारा पीटा, पर सिलिया नहीं गई। अब दातादीन ने भी उसे निकाल दिया। होरी ने सिलिया को आश्रयहीन पाकर अपने यहां आश्रय दिया।

इस समय तक बूढ़े भोला ने एक जवान स्त्री से शादी कर ली थी। वह होरी के गांव में आकर नोखेराम के यहां रहने लगा। नोखेराम ने उसकी जवान बीवी को रख लिया। सारे गांव में यह बात फैल गई। भोला की बीवी बदनामी दूर करने के लिये सोना के विवाह में दो सौ रुपया देने को तैयार हो गई। होरी इन रुपयों को पाने के लिये उसकी हां में हां मिलाने लगा।

इधर गोबर ने शहर में आने पर देखा कि उसके स्थान पर एक दूसरे खोंचेवाले ने कब्जा कर लिया है। लड़का भी चल बसा। गोबर ने शक्कर की मिल में नौकरी कर ली। उसने शराब पीना शुरू कर दिया। वह घर आकर झुनिया को गालियां देता, और उसे पीटता था।

इधर शक्कर को मिल के डाइरेक्टरों ने फैली हुई बेकारी से फायदा उठाया। उन्होंने आधी मजदूरी पर नये लोगों की भर्ती करने के लिये हड़ताल कराने की सोची। जब गोदाम में माल खूब भरा था, तब उन्होंने मजदूरी एकाएक घटा दी। मजदूर तत्काल हड़ताल करने पर बाध्य हुए। हड़ताल होते ही मिल मालिकों ने मजदूरों की नई भर्ती की, और उन्हें बहुत मजदूर मिल गये। हड़तालियों और नये मजदूरों में दंगा हो गया। गोबर को भी सख्त चोट आई। बड़ी सेवाओं के बाद उसकी रक्षा हो सकी। शक्कर की मिल में आग लग गई, और उसके मैनेजिंग डाइरेक्टर मिस्टर खन्ना अर्ध विक्षिप्त से हो गये।

मालती डाक्टर मेहता से बहुत प्रभावित हुई थी, मेहता के संपर्क में आकर उसकी त्यागभावना जागृत हुई। वह डाक्टर मेहता के साथ होरी के गांव में ग्रामसुधार करने गई। वहां डाक्टर मेहता ने पुरुषों के साथ बातचीत की, और मालती ने स्त्रियों के साथ। मालती ने ग्रामीण स्त्रियों को स्वच्छता और संयम से रहने का उपदेश दिया। इस पर धनिया ने उसे टोका। 'यहां सब सफाई और संजम कैसे होगा सरकार! भोजन तक का ठिकाना तो है ही नहीं।' गांव का चक्कर लगा चुकने के बाद दोनों नदी किनारे गये, और वहां डाक्टर और मालती ने नदी की सैर की।

राय साहब के तीनों मनोरथ पूर्ण हो गये। पुत्री का विवाह हो गया, चुनाव में सफल तो हुए ही, साथ ही होम मिनिस्टर भी हो गये। उन्हें राजा की पदवी भी मिल गई। उनके हारे हुए प्रतिद्वन्द्वी राजा सूर्यप्रतापसिंह ने उनके पास उनके पुत्र रुद्रपाल-सिंह के साथ अपनी कन्या के विवाह का पैगाम भेजा। उनका पुत्र रुद्रपालसिंह एम० ए० का विद्यार्थी था, और वह कट्टर आदर्श-

वादी था। उसने इस विवाह को करने से इन्कार कर दिया, और यह भी साफ़-साफ़ बतला दिया कि मालती की बहिन सरोज से ही उसकी शादी होगी। इस पर जब राजा साहब ने मालती के साथ विवाह की असंभवता पर जोर दिया, तो उसने कह दिया कि सरोज से उसका विवाह हो चुका है। सूर्यप्रताप को जब यह हाल मालूम हुआ, तो वे फिर से राजा साहब के दुश्मन बन गये। यही नहीं राजा अमरपाल के दामाद दिग्विजय-सिंह पक्के विलासी थे। एक दिन जब वे अपनी महफिल में वेश्या का नाच देख रहे थे, तब उनकी लड़की ने अपने पति की खूब खबर ली, और फिर पिता के घर चली आई। तब से उनकी लड़की और दामाद एक दूसरे के खून के प्यासे थे। इस प्रकार राय साहब महान विपत्ति में पड़े हुए थे।

गोबर अच्छा होने पर मालती के यहां पन्द्रह रुपये मासिक पर माली हो गया। वहां मालती की देख-रेख में उसका नव-जात बीमार लड़का ठीक हो गया।

इधर होरी के यहां रहते समय सिलिया ने एक लड़के को जन्म दिया। इस बीच में मातादीन कई सौ रुपये खर्च करके प्रायश्चित कर चुका था। प्रायश्चित के बावजूद भी गांववालों ने उसके साथ छुआछूत का व्यवहार जारी रखा। लाचार होकर वह सिलिया को ही अपनी पत्नी बनाने की बात सोचने लगा। पुत्र के जन्म होने के बाद वह एक दिन सिलिया को लिवा लाया, और कुछ दिन बाद जब उसके लड़के की मौत हुई, वह अकेले ही उसे श्मशान ले गया।

होरी की हालत बहुत गिर गई थी, और उसका खेत बेद-खल होनेवाला था। पण्डित दातादीन के सुझाव पर उसने

अपने को असहाय पाकर अपनी लड़की रूपा का विवाह राम-सेवक नाम के एक अधेड़ पर खाते-पीते किसान से कर दिया। इससे होरी के हृदय में गहरी चोट लगी, पर यह सब उसने अपनी जमीन को बचाने के लिये किया। गोबर अपनी बहिन की शादी के उपलक्ष्य में घर आया था, पर उसने जो अपने घर की हालत देखी, तो उसे बड़ा कष्ट हुआ। जब गोबर चलने लगा तो होरी ने उससे धनिया के सामने कहा—बेटा मैंने जमीन के मोह से पाप की गठरी सिर पर लादी। न जाने भगवान मुझे इसका क्या दण्ड देंगे।

पर रूपा जब अपने ससुराल गई, तो वह खुश थी। उसे पति की उम्र से कोई सम्बन्ध नहीं था। उसने जो भरा हुआ खेत और खलिहान देखा, तो उसे खुशी हुई कि ये सब उसी के हैं।

बहुत दिनों के बाद हीरा घर लौट आया। इस बीच में वह पागल हो गया था। जब देखो तब उसकी आंख के सामने वही मारी हुई गाय दिखलाई पड़ती थी। वह कई पागलखानों में हो आया था। उसे अंतिम पागलखाने से छूटे हुए छै महीने हुए थे, पर घर आने का निश्चय नहीं कर पाता था। अंत तक जब मन नहीं माना, तो वह घर आया। होरी ने उसको छाती से लगा लिया, और दोनों भाई खूब खुलकर मिले।

होरी को एक दिन लू लग गई। भीतर से सारा शरीर जल रहा था, और हाथ-पांव ठंडे हो चुके थे। उसके सामने जीवन के सब दृश्य नाच रहे थे। वह समझ रहा था कि अब वह मरने वाला है। उसके मन में गाय की लालसा रह ही गई थी। चारों तरफ से लोग कह रहे थे—'अब गोदान करा दो, यही

ही वह होरी से सहमत न हो, और उसकी हर मौके पर आलो-चना करे, वह सच्चे मानों में उसकी जीवन-संगिनी है।

गोबर नई पीढ़ी का, पर

गोबर नई पीढ़ी का नौजवान है। उसका खून होरी से कुछ गरम है, पर अभी इतना गरम नहीं है कि वह क्रांति के बिंदु तक पहुंच जाय। फिर भी यह द्रष्टव्य है कि हर मौके पर हर चीज को अपने बाप के दृष्टिकोण से नहीं देखता है, और यहीं भविष्य का उद्धार छिपा हुआ है। वह मिल की हड़तालों में भाग लेता है, और उसे चोट आती है। इतना कह देने पर उसके संबंध में यह अवगुण बताना ही पड़ता है कि वह झुनिया की अस-हाय अवस्था में भाग जाता है। यदि उसके बाप या मां वैसे न होते जैसे वे थे, और समाज का भय खाते, तो झुनिया की जो अवस्था होती उसकी कल्पना की जा सकती है। वह नई पीढ़ी का है तथा उग्र विचार रखता है, इसलिए उसके इस अपराध की क्षमा तो नहीं हो सकती। इस संबंध में उसका बाप उससे कहीं अच्छा है।

ऐबी दातादीन

दातादीन में हम ग्रामसमाज के सब ऐबों को एकत्रित देख सकते हैं। वह अपने ऐबों को धर्म से ढकने की चेष्टा करता है, यही उसकी विशेषता है। वह इतना कफ़नखसोट है कि सामा जिक तरीके से न सही वास्तविक तरीके से अपनी पुत्रवधू सिलिय से मजूरिन का काम लेता है। उसमें नैतिक साहस बिलकुल नहं है, और अपने आराम के लिए वह किसी का भी किसी सम त्याग कर सकता है। चमारों का हमला होते ही वह सिलिया च अपने यहां से भगा देता है, क्योंकि उसका उद्देश्य इतना ही

सकते हैं। अवश्य वह यह समझते थे कि स्टेज-मैनेजर उनके नाटक में कहीं-कहीं काट-छांट करेंगे। यद्यपि वे संगीत नहीं जानते थे, फिर भी उन्होंने नाटक के गाने भी खुद ही लिखे।

दो नाटक

उन्होंने कुल मिलाकर दो नाटक लिखे। एक 'कर्बला' और दूसरा 'संग्राम'।

कर्बला की रचना

कर्बला मुस्लिम इतिहास की एक बहुत प्रसिद्ध घटना को लेकर लिखा गया है। यह एक ऐतिहासिक नाटक है, और इसमें उस घटना को चित्रित किया जाता है जो मुस्लिम पुराण में हजरत मुहम्मद के समय के बाद की सबसे प्रसिद्ध घटना मानी जाती है। इस घटना को अपने नाटक के कथानक के रूप में चुनकर प्रेमचंद ने मानो अपने माथे पर असफलता का टीका को खुद ही लगा लिया। हिन्दू पाठकों से यह आशा नहीं की जा सकती थी कि वे इस घटना की सारी पृष्ठभूमि को जानें, और मुसलमान कट्टर होने के कारण इस बात को पसन्द ही नहीं करते थे कि एक गैर मुसलमान उनकी सबसे प्रसिद्ध पौराणिक घटना को लेकर कोई नाटक लिखे।

कर्बला पर मुसलमान आलोचक

सचमुच मुसलमान समालोचकों ने यह बात कही भी। प्रेमचंद को यह बात कुछ पसन्द नहीं आई, क्योंकि उनका उद्देश्य किसी को छोटा करके दिखाना नहीं था बल्कि गौरव मंडित करना ही था। पर जब आलोचकों ने ऐसी बात कही तो प्रेमचंद को बहुत ठेस पहुंची और उन्होंने अपने एक मित्र को अपने पत्र में साफ-साफ लिख दिया कि जब हसन निजामी कृष्ण की जीवनी

[दे]ख सकते हैं, और मुसलमान उसे पसन्द कर सकते हैं तो क्या [क]ारण है कि 'कर्बला' पर लिखे हुए नाटक को लेकर मुसलमान [व]िरुद्ध समालोचना कर रहे हैं। उनको इस संबंध में काफी दुःख [र]हा।

संग्राम

उनका दूसरा नाटक 'संग्राम' है, जिसके संबंध में मेरी यह राय है कि वह मजे में उपन्यास के रूप में लिखा जा सकता था। कथानक भी वही पुराने ढंग का है, जैसा कि नीचे लिखे हुए उसके सार से ज्ञात होगा।

संग्राम

ठाकुर सबलसिंह एक उदार जमींदार के रूप में मशहूर थे। वे किसानों की हालत जानने के लिये शहरवासी होते हुए भी अपने इलाके का चक्कर लगाते थे, और किसानों से मेलजोल बढ़ाते थे। उन्होंने किसानों की भलाई को ध्यान में रखकर बेगार आदि का अन्त कर दिया था। उनका भाई कंचनसिंह साहूकारी करता था, और आसामियों से कसकर सूद वसूल करता था।

हलधर सबलसिंह के गांव मधुबन का किसान था। हाल ही में उसका गौना हुआ था। उसकी स्त्री राजेश्वरी सुन्दरी, बुद्धिमती और सुशीला थी। उसके इन्हीं गुणों के कारण ठाकुर साहब उस पर रीझ गये, और उसे प्राप्त करने के उपाय करने लगे। एक दिन मौका पाकर उन्होंने राजेश्वरी के प्रति अपना प्रेम निवेदन भी किया, पर वे विवेकशीला राजेश्वरी से फटकार खा गये। फटकार खाकर भी उनका अनुराग कम नहीं हुआ।

हलधर ने यह देखा कि अब की बार फसल अच्छी होने जा [रही] है। इसलिये उसने पिता की बरखी, स्त्री के गहनों आदि के

लिये कंचनसिंह से बहुत अधिक सूद पर २००) ऋण लिये, पर अकस्मात् ओले पड़ गये, और सारी फसल नष्ट हो गई। सबलसिंह इस समय तक अपने उद्देश्य के लिये सब कुछ करने को उतारू हो गये थे। उनके मत की पुष्टि बाबा चेतनदास नामक एक माने हुए संन्यासी ने भी कर दी। हलधर की विपत्ति से उन्होंने फायदा उठाया। वाहवाही लूटने के लिये उन्होंने और किसानों का तो लगान माफ़ करवा दिया, पर हलधर को हिरासत में भिजवा दिया। हलधर के गायब हो जाने के बाद राजेश्वरी बहुत चिंतित रहने लगी, पर बहुत विचार करने के बाद उसने सबलसिंह के पास जाकर बदला लेने का इरादा किया। वह सबलसिंह के पास शहर में गई, और उनके द्वारा किराये पर लिये गये एक मकान में रहने लगी। यहीं उसे सबलसिंह से मालूम हुआ कि उसके घर की देख-रेख गांव के वृद्ध फत्तू मियां कर रहे हैं। राजेश्वरी और सबलसिंह का यह संबंध उनके घरवालों को मालूम हो गया, और एक दिन राजेश्वरी के घर से निकलते हुए उनके भाई कंचनसिंह ने उन्हें देख लिया।

इधर गांव में फत्तू मियां ने कानपुर, बम्बई आदि औद्योगिक शहरों का चक्कर लगाया, पर वे हलधर को न खोज सके। अंत में कुछ सुराग पाकर उन्होंने गांववालों से मिलकर हलधर का कर्ज चुकाया, और उसे जेल से छुड़ाया। हलधर के छूटने की खबर पाकर सबलसिंह ने राजेश्वरी के साथ मसूरी यात्रा करने का निश्चय किया। उन्होंने घर में कहा कि वे अकेले ही सफर करेंगे। जब वे किसी तरह समझाने पर नहीं माने तो कंचनसिंह उन्हें रोकने के लिये राजेश्वरी के पास गये, पर वे भी राजेश्वरी के प्रेम की उपासना करने लगे।

स्वामी चेतनदास सबलसिंह की स्त्री ज्ञानी को प्राप्त करना

चाहते थे। इसके लिये उन्होंने बड़े-बड़े जाल फैलाये। वे मधुवन गये, और उन्होंने सारा भेद हलधर को बता दिया। हलधर यह हाल सुनकर सबलसिंह के खून का प्यासा हो गया। इसी बीच उसने देखा कि तीन डाकुओं ने ज्ञानी को अकेली पाकर उस पर हमला किया। उसने डाकुओं को पीटकर ज्ञानी की रक्षा की।

सबलसिंह ने जब यह देखा कि कंचनसिंह राजेश्वरी से प्रेम करता है, तो वे उसकी जान के गाहक हो गये। वे उसे मारने के लिये आधी रात के समय उसके कमरे में जा रहे थे। इतने में उनकी हत्या करने के लिये हलधर उनके पास पहुंचा। पर सबलसिंह ने उसे समझाया कि असली दुश्मन कंचनसिंह है। वह कंचनसिंह की टोह में गंगातट पर पहुंचा, पर कंचनसिंह उसी समय आत्महत्या करने के लिये गंगा में कूद रहा था। हलधर उसे आत्महत्या करते देखकर नदी में कूद पड़ा, और उसने कंचन को डूबने से बचा लिया।

इधर पुलिस वाले बेगार आदि न मिलने के कारण सबलसिंह पर नाराज थे। गांव वालों को डरा धमका कर उनसे जबर्दस्ती बयान लिये गये। जब सब कुछ मसाला तैयार हो गया, तो उन्होंने सबलसिंह के मकान पर धावा कर दिया। उस समय सबलसिंह के यहां कंचनसिंह को गंगा-स्नान से लौटता न देखकर शोक का वातावरण था। वहां उनकी हवेली की तलाशी ली गई, और उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। इसी समय स्वामी चेतनदास ने प्रवेश किया, और उन्हें जमानत देकर छुड़ा लिया। इसके बाद जब ज्ञानी स्वामी चेतनदास की कुटिया पर पहुंची, तो स्वामी जी ने उसे अपमानित करना चाहा, पर वह सम्हल गई, और कुटिया छोड़ कर चली गई।

सबलसिंह फिर राजेश्वरी के पास पहुंचे। भाई की हत्या के

ख्याल से वे अर्ध विक्षिप्त से हो गये थे, और आत्महत्या करने की सोच रहे थे। राजेश्वरी ने जब उन्हें इस दशा में पाया, तो उसके घातक भाव लुप्त होने लगे। सबलसिंह ने राजेश्वरी से जब कहीं दूर चलने के लिये कहा तो उसने साफ इन्कार कर दिया। उसने यह भी कह दिया कि वह सबलसिंह के पास अपने अपमान का बदला लेने आई थी।

इधर कंचनसिंह ने जब यह देखा कि हलधर उसके भाई की हत्या करने को तैयार है, तो उसने अपनी सारी दस्तावेजें हलधर को देने का प्रलोभन दिया, पर हलधर अपने निश्चय से नहीं डिगा। सबलसिंह पश्चात्ताप की भावना से आत्महत्या करने वाले ही थे कि हलधर उनके पास पहुंचा, और उन्हें आत्महत्या नहीं करने दी। वह उन्हें कंचनसिंह के पास ले गया।

ज्ञानी सबलसिंह को खोजते-खोजते राजेश्वरी के पास पहुंची। जब वह उन्हें वहां भी न पा सकी, तो उसने हताश होकर आत्महत्या करने के लिये अंगूठी चाट ली। राजेश्वरी ने जब ज्ञानी को आत्महत्या करते देखा, तो उसने भी रस्सी से फांसी लगा ली। जब वह लटक ही रही थी कि हलधर वहां पहुंचा, और उसे मरने से बचा लिया। जब हलधर राजेश्वरी को ताने दे ही रहा था, कि ज्ञानी को कुछ होश आया, और वह राजेश्वरी की निर्दोषिता और कलंकहीनता प्रमाणित कर मर गई। उसके मरने के पहले चेतनदास भी वहां पहुंचा, और उससे क्षमा याचना की। ज्ञानी ने उसे मरते समय क्षमा कर दिया।

स्वामी चेतनदास ज्ञानी की आत्महत्या के बाद विक्षिप्त से हो गये, और उसी अवस्था में वे नदी में डूब गये। सबलसिंह

ने सारी तकलीफों और ज्ञानी की आत्महत्या का जिम्मेदार संपत्ति और धन को ठहराया। उन्होंने अपनी जमींदारी आदि का परित्याग कर दिया। उनकी कोठी धर्मशाला बनादी गई, और विलास सामग्री का मूल्य तथा नगदी आदि को मिलाकर जो एक लाख रुपये जमा थे, उनसे ठाकुरद्वारा बनवा दिया गया। हलधर और राजेश्वरी फिर से अपने गांव पहुंच गये। वहां राजेश्वरी की बहुत आवभगत हुई।

संग्राम और प्रेमाश्रम

ऊपर इस नाटक का जो सार दिया गया है, उससे केवल उसके कथानक का ही अंदाज लगता है, और नाटक में कथानक ही सब कुछ नहीं है। कथानक के संबंध में यह तो स्पष्ट है कि वह उनके किसी उपन्यास के ही कथानक की तरह है। इस नाटक का भी अंत एक आदर्शवादी परिस्थिति में होता है। जैसे 'प्रेमाश्रम' के मायाशंकर ने अपनी सारी जमींदारी दान में दे दी, इसी प्रकार 'संग्राम' के सबलसिंह में जब चैतन्य का उदय होता है, और वह अपने पापों के लिये पछताता है, तब वह अपनी सारी जमींदारी दे देता है।

प्रेमचंद ने इस नाटक में यह दिखलाया है कि जमींदारी प्रथा में लोगों की बहू बेटियां तक खतरे में है, पर इस पद्धति की पोल इस प्रकार खोलते हुये भी वे इस नाटक में प्रेमाश्रम के समाधान को ही लागू करते हैं।

कुछ विशेपतायें

इसके अलग अलग पात्रों पर विचार करने की कोई आवश्यकता नहीं है। इनमें जितने भी पात्र हैं, उन्हें हम ढूंढने पर प्रेमचंद के उपन्यासों में पा सकते हैं। इसमें आत्महत्याओं

पूर्वक इसका निराकरण किया। उनकी बहुत सी कहानियां ऐसी हैं जिनमें स्त्री पुरुष के प्रणय की कोई चर्चा नहीं है। ऐसी कहानियों में विभिन्न विषयों को लिया गया है, जैसे हास्य, इनमें (१) मोटेराम शर्मा, (२) सत्याग्रह आदि कहानियां हैं। कुछ कहानियों में समाज में प्रचलित अत्याचारों का वर्णन है जैसे (१) अमावस्या की रात्रि, (२) बलिदान, (३) सवासेर गेहूं को लीजिये।

पाखंडों पर चोट

नैतिक तथा धार्मिक पाखंड को भी उन्होंने अपनी कई कहानियों का उपजीव्य बनाया है। रामलीला कहानी इसी श्रेणी में आती है। उसमें यह दिखलाया गया है कि किस प्रकार रामलीला की आड़ में आवारा लड़कों तथा वेश्याओं की आवभगत की जाती है।

सभ्यता की पोल

'सभ्यता का रहस्य' नामक कहानी, समरथ को नहीं दोष गुसाईं वाली बात को वास्तविक रूप से दिखलाती है। जब मालिक वही काम करता है, तो वह अच्छा या सभ्य समझा जाता है, और जब नौकर उन्हीं कामों को करता है तो वह दुष्ट करार दिया जाता है। प्रेमचंद समाज जीवन के इस रहस्य को अच्छी तरह समझते थे।

यह तो संभव नहीं है कि उनकी सारी कहानियों का अलग अलग वर्गीकरण किया जाय, इसीलिये हम कुछ मुख्य कहानियों का ही इस प्रसंग में उल्लेख कर सकते हैं। हम [illegible] प्रसिद्ध कहानियों के सम्बंध में मन्तव्य प्रकट करके इस अध्याय को समाप्त कर देंगे।

'बासी भात में खुदा का साझा' नामक कहानी में उन्होंने इस बात को मनोवैज्ञानिक ढंग से चित्रित किया है कि ईश्वर के प्रति दीनानाथ नामक एक व्यक्ति की श्रद्धा किन परिस्थितियों में पैदा होती है, और किन परिस्थितियों में घट जाती है। दीनानाथ बेकारी की अवस्था में तो नास्तिक रहते हैं, परन्तु नौकरी पाते ही वह आस्तिक हो जाते हैं। इसके बाद जब मैनेजर उनसे यह कहते हैं कि यदि वे जालसाजी करें तो हिस्सेदारों को तो नुकसान होगा, पर सौ आदमियों की नौकरी बच जायगी, वे जालसाजी करते हैं। उनके मस्तिष्क में ईश्वर का भय समा जाता है, और बीमार पड़ने पर वे तरह-तरह के पुराणों में वर्णित नरक के दृश्य देखते हैं। जब वे अच्छे होते हैं तब ईश्वर पर से उनका विश्वास हट जाता है, वे कहते हैं—'ऐसे आतंकमय जीवन, दंडमय जीवन के लिये मैं ईश्वर का एहसान नहीं लेना चाहता। बासी भात में खुदा के साझे की जरूरत नहीं।'

उद्धार

'उद्धार' नामक कहानी में दहेज प्रथा की भयंकरता दिखा
गई है। पिता माता यह जानते हुये भी कि जिसे वह दामा

तथ्यों को अपने अखबार में प्रकाशित करता है। इस पर इस्त-गासा की तरफ से कैलाश पर मुकदमा दायर होता है। नईम अदालत में झूठ बोलता है। जीत इस्तगासे की होती है, और कैलाश पर २००००) रु० की डिक्री हो जाती है। बाद में नईम बिना रुपया पाये ही रसीद लिख देता है कि उसे रुपये मिल गये। इस कहानी का रुख आदर्शवादी है।

तेंतर

'तेंतर' नाम की कहानी में हमारे समाज में प्रचलित अंध विश्वासों और कुसंस्कारों का अच्छा चित्र खींचा गया है। इस कहानी में बतलाया गया है कि किस प्रकार पढ़े लिखे आदमी भी इन अंध विश्वासों में फंस जाते हैं। पंडित दामोदरदत्त शिक्षित आदमी थे। उनके यहां तीन पुत्रों के पश्चात् एक पुत्री का जन्म हुआ। प्रचलित अंधविश्वास के अनुसार तेंतर से घर में भयंकर विपत्ति आती है, और उससे बचने का उपाय यही है कि तेंतर मर जाय। कन्या के जन्म होने के बाद महीनों बीत गये पर कोई अनिष्ट नहीं हुआ, तब पंडितजी की मां को बड़ा अफसोस हुआ। उन्होंने युक्ति सोची, और वह बीमार पड़ गईं। उनकी बीमारी का सारा इलजाम तेंतर के सिर पर मढ़ा गया। एक हफ्ते के बाद वे बिना दवादारू के ही ठीक हो गईं। हां, गोदान किया गया था, और दुर्गापाठ कराया गया था। पड़ोस की एक स्त्री ने ये कहा—'यह तो बड़ी कुशल हुई कि बुढ़िया के सिर गई, नहीं तो तेंतर मां बाप दो में से एक को लेकर शांत होती है।'

आत्माराम

'आत्माराम' को प्रेमचंद अपनी सर्वोत्कृष्ट रचनाओं में से एक समझते थे। इसमें महादेव नामक एक वृद्ध पर कंजूस सुनार

का चित्र है, जो पहले सिरे का बेईमान था। उसे प्रेम था तो केवल एक तोते से। एक दिन तोता पिंजड़े में से उड़ गया। तोता एक वृक्ष की डाल पर बैठ गया। आत्माराम भी पिंजड़ा लेकर बैठा रहा, और वहां से कहीं नहीं हटा। आधी रात के समय उसे पास ही आहट मिली, और दीपक का प्रकाश दिखा। वह वहां गया। वहां चोर धन का बटवारा कर रहे थे। महादेव को देखते ही वे भाग गये। सारा धन महादेव के हाथ लगा। जब वह धन लेकर घर आने वाला ही था कि तोता पिंजड़े में आकर बैठ गया। दूसरे दिन से महादेव बहुत शाहखर्च हो गया, और अच्छे कामों में पैसा खर्च करने लगा। इस कहानी में महादेव के व्यवहार-परिवर्तन का चित्र बड़ी सफलतापूर्वक आदर्शवादी ढंग से खींचा गया है।

शोक में उनकी पत्नी भी चल बसीं। इस प्रकार इस कहानी में उन्होंने रिश्वतखोरी का दुष्परिणाम बतलाया है। यह सत्य है कि इस कहानी में भी वे आदर्शवादी हो गये हैं, और समाज को उन्होंने बहुत उच्च और संगठित रूप में चित्रित किया है।

दुर्गा का मंदिर

'दुर्गा का मंदिर' नामक कहानी में प्रेमचंद ने ब्रजनाथ नामक व्यक्ति के मानसिक संघर्ष का अच्छी तरह चित्रण किया है। उसे घास पर आठ गिन्नियां पड़ी मिलीं। उसने उन्हें थाने में जमा करने का इरादा किया, पर उसकी स्त्री ने इसका विरोध किया। फिर भी वह उन्हें जमा करने जा रहा था। इतने में मुसीबत में पड़े एक मित्र ने उससे ३०) मांगे। ब्रजनाथ ने उसे दो गिन्नियां दे दीं। तदुपरान्त उसका मित्र बाहर चला गया। ब्रजनाथ उस रकम को पूरा करने के लिए फुर्सत के समय दूसरे काम करने लगा। पर अधिक मिहनत से वह बीमार पड़ गया। इसी समय उसकी स्त्री दुर्गामंदिर में अपने पति की रोगमुक्ति के लिए प्रार्थना करने गई। यहीं एक बुढ़िया उसे मिली। वह अपनी गिन्नियां चुराने वाले को शाप दे रही थी। ब्रजनाथ की स्त्री ने अपने कानों के झुमके बेचकर उसे उसकी रकम वापस दी। ब्रजनाथ चंगा हो गया। यह कहानी ब्रजनाथ की बीमारी तक तो यथार्थ के बिलकुल समीप है, परन्तु दुर्गा के मंदिर में बुढ़िया का मिलना, और उसके आशीर्वाद से ब्रजनाथ का अच्छा होना, काल्पनिक है।

पंच परमेश्वर

'पंच परमेश्वर' भी प्रेमचंद की सर्वोत्तम कहानियों में से है। इसमें प्रेमचंद ने दिखलाया है कि अलगू चौधरी, जुम्मन के

अभिन्न मित्र होते हुए भी, जब सरपंच बनाये जाते हैं, तो वे दूध-का-दूध और पानी-का-पानी कर जुम्मन के ख़िलाफ़ फैसला देते हैं। इस फैसलें के कारण जुम्मन शेख और अलगू चौधरी दोनों जानी दुश्मन हो जाते हैं। इसके बाद अलगू चौधरी और समझू साहु के झगड़ों का अंत करने के लिये पंचायत बुलाई जाती है। जुम्मन शेख इस पंचायत के सरपंच चुने जाते हैं। अलगू के जानी दुश्मन होते हुए भी जुम्मन ने मामले पर विचार किया, और सत्य को अलगू के पक्ष में देखा। उन्होंने वैसा ही फैसला दिया। जुम्मन के शब्दों में—'पंच के पद पर बैठकर न कोई किसी का दोस्त है, और न दुश्मन, न्याय के सिवाय उसे और कुछ नहीं सूझता, आज मुझे विश्वास हो गया कि पंच की ज़बान से खुदा बोलता है।' कहानी पर विचार करने से ज्ञात होता है कि इसमें भी आदर्श दिखलाया गया है।

बड़े घर की बेटी

'बड़े घर की बेटी' गांव के सम्मिलित परिवार का चित्रण करनेवाली एक सुन्दर कहानी है। इस कहानी में यह बतलाने की चेष्टा की गई है कि आनंदी ने परिवार को किस प्रकार अलग होने से बचा लिया। आनंदी बड़े घर की बेटी थी। वह जिस घर में ब्याही थी, वह खातापीता घर था। यहीं पर आनंदी की अपने देवर के साथ कुछ गरम बातचीत हो गई, और गुस्से में आकर देवर ने उसे खड़ाऊं मार दी। आनंदी के पति को जब यह मालूम हुआ, तो उन्होंने अलग होने का निश्चय किया। पर आनंदी ने बीच में पड़कर यह नौबत नहीं आने दी।

एक आंच की कसर

'एक आंच की कसर' नामक कहानी में तीक्ष्ण व्यंग्य है बाबू यशोदानन्द अपने बेटे की शादी में दहेज लेने से इन्का

कर देते हैं। उनकी शहर में बड़ी चर्चा है। पुत्र के तिलक के अवसर पर उपस्थित व्यक्तियों के सामने वे अपनी सिद्धांत-प्रियता पर भाषण देते हैं। उनके बाद उनका छोटा लड़का भाषण देने आता है, परन्तु धोखे से उसके हाथ में वह कागज पड़ जाता है, जिसमें दहेज की गुप्त शर्तें तय की गई थीं। महाशय यशोदानन्द का सारा भेद खुल गया, और वे अपने छोटे लड़के को कुपित नेत्रों से देखते रह गये।

शतरंज के खिलाड़ी

'शतरंज के खिलाड़ी' में ह्रासशील सामंतवाद का बहुत [illegible] चित्र खींचा गया है। कुछ समालोचक गलती से इसे शतरंज की लत का चित्रण मात्र समझते हैं, पर ऐसा समझना इस कहानी को उसके वास्तविक श्रेय से वंचित करना है। लखनऊ के अन्तिम नवाब वाजिदअलीशाह के समय का बहुत सुन्दर चित्रण के रूप में यह कहानी अमर रहने के लिए बाध्य है। उस समय की सामाजिक अवस्था का नक्शा यों पेश किया गया है—

रख दिया गया है। इस कहानी को 'ऐतिहासिक कहानियों' में गिनने के यथेष्ट कारण हैं।

मंच

'मंच' कहानी में धर्मध्वजियों का मज़ाक उड़ाया गया है। यह स्पष्ट हो जाता है कि जो लोग अपने को धर्म का ठेकेदार बताते है, वे अक्सर मामूली चोर बदमाशों से भी बुरे हो जाते हैं। अपना उल्लू सीधा करने में वे कहीं पर नहीं रुकते। 'मंच' कहानी का बूढ़ा किस प्रकार से लीलाधर के इस कथन का खंडन करता है कि वर्णभेद ऋषियों का ही किया हुआहै—

'ऋषियों को मत बदनाम कीजिए। यह सब पाखंड आप लोगों का रचा हुआ है। आप कहते हैं—तुम मदिरा पीते हो; लेकिन आप मदिरा पीने वालों की जूतियां चाटते हैं। आप हमसे मांस खाने के कारण घिनाते हैं, लेकिन आप गोमांस खाने वालों के सामने नाक रगड़ते हैं। इसलिए न कि वे आपसे बलवान हैं। हम भी आज राजा हो जायं तो आप हमारे सामने हाथ बांधे खड़े होंगे। आपके धर्म में वही ऊंचा है जो बलवान है, वही नीच है जो निर्बल है। यही अपना धर्म है।"

हिंसा परमोधर्मः

'हिंसा परमोधर्मः' कहानी में इसी प्रकार धर्म पर ही एक चोट है। इसमें लेखक ने चलते हुए हिंदू मुस्लिम प्रश्न पर भी प्रकाश डाला है। इसमें कुछ मुसलमानों की उस संकुचित वृत्ति का भी दिग्दर्शन कराया गया है, जिसके कारण बाद को चलकर पाकिस्तान की सृष्टि हुई।

धोखा

'धोखा' मामूली ढंग की एक प्रेमकहानी है। इसमें प्रेमचंद ने मामूली कहानीकारों की तरह प्रेम का एक ऐसा चित्र खींचा

लें जिससे देशकाल का कुछ पता नहीं चलता। हां प्रेमकहानी के रूप में यह रोचक है।

शंखनाद

'शंखनाद' नामक कहानी में प्रेमचंद ने एक मामूली खाते-पीते ग्रामीण परिवार को लिया है। गांव के मुखिया के तीन लड़के हैं। उनमें से दो तो कमाते हैं, पर तीसरा कमाने-धमाने के बजाय मटरगश्ती करता है। स्वभावतः उसे और उसकी बीबी को भाइयों, भावजों और पिता से ताने मिलते हैं, पर वह अपनी धुन में मस्त रहता है। एक दिन एक खोंचे वाला आया। घर के सब बच्चों ने कुछ न कुछ खरीदा। पर उस निकम्मे व्यक्ति का बच्चा पैसे न होने के कारण कुछ न खरीद सका। वह रोने लगा, तब उसकी मां ने उसे पीट दिया। बच्चे का मुहताज होना, उसके लिये चुभ गया, और उसने पत्नी से कहा—बच्चे पर इतना क्रोध क्यों करती हो ? तुम्हारा दोषी मैं हूं······परमात्मा ने चाहा तो कल से लोग मेरा और मेरे बाल-बच्चों का आदर करेंगे। तुमने आज मुझे सदा के लिये जगा दिया, मानों मेरे कानों में शंखनाद करके मुझे कर्मपथ में प्रवेश करने का उपदेश दिया हो।

इस कहानी में चरित्र परिवर्तन का जो उदाहरण दिया गया है, वह मनोवैज्ञानिक और सामाजिक, दोनों ही दृष्टियों से उत्कृष्ट है। इसके साथ ही इसमें ग्राम्यजीवन का सुन्दर चित्रण भी है।

विचित्र होली

पर कलेक्टर साहब के हाथ से मार खाकर बिलकुल बदल गये और असहयोगियों में शामिल हो गये। साथ ही इसमें यह भी दिखलाया गया है कि यों तो धर्म के नाम पर सब आपस में लड़ते हैं, पर लोग किसी भी बहाने से नशेबाजी आदि दुष्कर्मों के लिये तैयार हो जाते हैं। कलेक्टर के मुसलमान अर्दली भी होली के नाम पर किस प्रकार धींगामस्ती और शराबखोरी आदि करते हैं, यह देखते ही बनता है। अन्य धर्म के अपेक्षाकृत अच्छे तथा निर्दोष कार्यों में तो लोग धार्मिक भेद के नाम पर हिस्सा नहीं लेते, पर उसके नाम पर होनेवाली बुराइयों में सब बड़े मजे में एक दूसरे का साथ देते हैं।

सत्याग्रह

'सत्याग्रह' यों तो हास्यरस की एक कहानी है, पर प्रेमचंद ने इसमें भी पण्डित मोटेराम शास्त्री को माध्यम बनाकर असहयोग आंदोलन के जमाने में राष्ट्रीय और राष्ट्र विरोधी तथा शासक शक्तियों के बीच चलने वाले संघर्ष की तस्वीर हमारे सामने रखी है। पंडित मोटेराम शास्त्री एक पेटू ब्राह्मण हैं। वे सरकार से पैसे लेकर कांग्रेस द्वारा आयोजित हड़ताल को विफल कराने के लिये अनशन कर देते हैं। उनके अनशन से व्यापारी वर्ग में खलबली मच जाती है। शास्त्री जी के पेट में भी खलबली मचती है। इसी समय स्थानीय कांग्रेस कमेटी के मंत्री मिठाई का दोना लेकर वहां पहुंचते हैं। बस शास्त्री जी का अनशन समाप्त हो जाता है।

मुक्ति मार्ग

'मुक्ति मार्ग' कहानी में यह दिखाया गया है कि किस प्रकार दो किसान आपस में वैर रखने लगते हैं, और फिर वे छल-बल

कौशल से एक दूसरे का सत्यानाश कर देते हैं। कहानी में ग्राम्य-जीवन के बहुत से पहलुओं पर चलते हुये रोशनी डाल दी जाती है। यह स्पष्ट हो जाता है कि किसान वर्ग इतना शक्तिशाली होने पर भी आपसी फूट के कारण आगे नहीं बढ़ पाता। अनावश्यक वस्तुयें आवश्यक प्रतीत होती हैं, और कर्मशक्ति का व्यर्थ में क्षय होता है।

अमावस्या की रात्रि

'अमावस्या की रात्रि' नामक कहानी में प्रेमचंद ने यह दिखलाया है कि अक्सर वैद्य, डाक्टर कितने स्वार्थी होते हैं। उन्हें इस बात की परवाह नहीं होती कि रोगी का जीवन कितना कीमती है। पंडित देवदत्त अपनी बीमार पत्नी के इलाज के लिये वैद्य जी के पास पहुंचे, पर बिना पैसे के उन्होंने इलाज करने से इन्कार कर दिया। जब उनकी पत्नी मरनेवाली थी, तो अकस्मात् एक ठाकुर ने उन्हें ७५,०००) रु० दिये और इस प्रकार उन्होंने अपने पूर्वजों द्वारा लिया गया कर्जा ब्याज सहित चुका दिया। देवदत्त जब इस प्रकार मिले हुये रुपयों को लेकर पत्नी के पास आये, तो उस समय तक वह मर चुकी थी। वे फौरन वैद्य जी के पास गये कि वैद्य जी उनकी पत्नी को जिला दें, और सारा का सारा रुपया ले लें। वैद्य जी को इस पर अपने किये का पश्चात्ताप हुआ, और उन्होंने भविष्य में ऐसा न करने की प्रतिज्ञा की।

कौशल

'कौशल' कहानी में प्रेमचंद ने यह दिखलाया है कि किस प्रकार एक स्त्री ने एक कौशल के द्वारा अपने आलसी पति को कर्मठ बना दिया। साथ ही स्त्रियों के गहनों पर जान देने की बात का भी चित्रण किया गया है। माया अपने पति से एक हार

मांगती रहती है। पति आलसी है, कुछ काम नहीं करता, तब वह चालाकी करती है। वह अपनी एक सहेली से एक हार लाती है, और रात को यह कह कर हल्ला मचाती है कि चोर उसका हार ले गये। अब दूसरे से लिये हुये हार को वापस देना जरूरी था, इसलिये पंडित जी उसी दिन से काम में जुटते हैं, और दिन में सोना तथा फजूल का सैर सपाटा करना छोड़ देते हैं। थोड़ ही दिनों में पंडित जी वढ़ी हुई आमदनी से हार बनवा देते हैं। जब हार बन कर पत्नी के सामने आ जाता है, तभी माया इस राज़ को खोलती है कि उसने एक कौशल किया था।' यद्यपि जीवन के बहुत छोटे पहलू को लेकर ही यह कहानी लिखी गई है, फिर भी कहानी में अच्छी नवीनता है।

राजा हरदौल

'राजा हरदौल' नामक कहानी में प्रेमचंद ने बुन्देलखंड की एक लोककथा को अपने सांचे में ढाल दिया है। जुझारसिंह ओरछा के राजा थे। जब खांजहां लोदी ने विद्रोह किया, तब उन्होंने दिल्ली के बादशाह की मदद की। खुश होकर बादशाह ने उन्हें दक्षिण में शासन करने भेजा। जुझारसिंह अपने छोटे भाई हरदौल को राजपाट देकर चले गये। उनकी स्त्री भी ओरछा में रही आई। जब राजा जुझारसिंह वापिस लौटे, तो उन्हें संदेह हुआ कि हरदौल और उनकी पत्नी में प्रेम है। इस संदेह का निवारण करने के लिये उन्होंने रानी को विवश किया कि वह हरदौल को विष दे। हरदौल ने विष खा लिया, और मर गये।

इस कहानी में प्रेमचंद ने उस समय के राज परिवारों संबंध का भली भांति चित्रण किया है। हरदौल के अन्दर उ जमाने के सामंतों की वीरता मौजूद है।

विनोद

'विनोद' नामक कहानी में प्रेमचंद ने कालेज-जीवन का बहुत ही सच्चा चित्र प्रस्तुत किया है। चक्रधर बहुत आचार विचार से रहने वाला छात्र है, लेकिन फिर भी वह कक्षा की एक एंग्लोइन्डियन लड़की लूसी की ओर आकर्षित होता है। उसके सहपाठी इस बात को ताड़ जाते हैं, और लूसी की ओर से पत्र लिखकर उसे मूर्ख बनाते हैं, और उससे पैसा ऐंठते हैं। चक्रधर उनके चकमे में आ जाता है, अपने आचार, नियम आदि छोड़ देता है, और फजूलखर्ची करने लगता है। मित्र लोग उसके सिर पर बढ़िया दावत उड़ाते हैं, और लूसी की तरफ से उसे झांसा देते हैं। लूसी भी इस दावत में आती है। भोज के बाद जब लूसी जाने लगती है, तो चक्रधर भी उसके पीछे-पीछे दौड़ते हैं, और उसका अपमान कर बैठते हैं। दंडस्वरूप उन्हें बीस बार सबके सामने कान पकड़ कर बैठकें लगानी पड़ती हैं।

जैसा कि कहानी के नाम से ही स्पष्ट है, कहानी में हास्यरस काफी मात्रा में मौजूद है। हास्यरस के साथ ही साथ इसमें जीवन भार से मुक्त अल्हड़ छात्रों का जो चित्र खींचा है, वह किसी भी कालेज के लिये दुर्लभ नहीं है।

लांछन

'लांछन' में मध्यवित्त श्रेणी के जीवन का खाका खींचा गया है। मुंशी श्यामकिशोर और उसकी पत्नी देवी में बड़ा प्रेम है। रजा-मियां नामक एक शोहदा देवी को अपने जाल में फंसाना चाहता है। अपने कार्य की सिद्धि के लिये वह झाड़ूवाले मुन्नू को अपनी तरफ मिला लेता है। श्यामकिशोर के मन में संदेह का अंकुर जमता है, और वह अंकुर दिन प्रति दिन बढ़ता ही जाता है।

प्रेमचंद के विचार

गहरे विचारक

प्रेमचंद विचारक भी थे। उनके साहित्य संबंधी विचार उनके समकालीन साहित्यकारों के विचारों से अधिक उन्नत और सुलझे हुए थे। यहां हम प्रेमचंद के कुछ साहित्य संबंधी विचार उद्धृत करते हैं 'प्रगतिशील लेखक संघ' के लखनऊ अधिवेशन में उन्होंने सभापति के पद से दिये गये अपने भाषण में कहा था—

साहित्य क्या है?

कला का उद्देश्य सौंदर्य वृत्ति की पुष्टि करना है और वह हमारे आध्यात्मिक आनन्द की कुंजी है, पर ऐसा कोई रुचिगत मानसिक तथा आध्यात्मिक आनंद नहीं जो अपनी उपयोगिता का पहलू न रखता हो। आनंद स्वतः एक उपयोगिता युक्त वस्तु है और उपयोगिता की दृष्टि से एक ही वस्तु से हमें सुख भी होता है और दुःख भी। आसमान पर छाई लालिमा निःसंदेह बड़ा सुन्दर दृश्य है, परन्तु आषाढ़ में अगर आकाश में वैसी ही लालिमा छा जाय, तो वह हमें प्रसन्नता देनेवाली नहीं हो सकती। फूलों को देखकर हमें इसलिये आनन्द होता है कि उनसे फलों की आशा होती है, प्रकृति से अपने जीवन का सुर मिलाकर रहने में हमें इसीलिये आध्यात्मिक सुख मिलता है कि उससे हमारा जीवन विकसित और पुष्ट होता है। प्रकृति का विधान वृद्धि और विकास है और जिन भावों, अनुभूतियों और विचारों से हमें आनन्द मिलता है, वे इसी वृद्धि और विकास के सहायक हैं। कलाकार अपनी कला से सौंदर्य की सृष्टि करके परिस्थिति के उपयोगी बनाता है। परन्तु सौंदर्य भी और पदार्थों की तरह स्वरूपस्थ और निरपेक्ष नहीं, उसकी स्थिति भी सपेक्ष है।"

साहित्य का लक्ष्य

साहित्यकारों के लक्ष्य के संबंध में उन्होंने अपने भाषण में कहा—"हमें एक ऐसे संघटन को सर्वांगपूर्ण बनाना है जहाँ समानता केवल नैतिक बन्धनों पर आश्रित न रखकर अधिक ठोस रूप प्राप्त करले" हमारे साहित्य को उसी आदर्श को अपने सामने रखना है।

"हमें सुन्दरता की कसौटी बदलनी होगी × × ×"

कला के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट करते हुए उन्होंने कहा—

"कला नाम था और अब भी है, संकुचित रूप-पूजा शब्द योजना का, भाव निबंधन का। उसके लिये कोई आदर्श नहीं है, जीवन का कोई ऊंचा उद्देश्य नहीं है,—भक्ति, वैराग्य, अध्यात्म और दुनिया से किनाराकशी उसकी सबसे ऊंची कल्पनायें हैं। हमारे उस कलाकार के जीवन का चरम लक्ष्य यही है उसकी दृष्टि अभी इतनी व्यापक नहीं है कि जीवन संग्राम में सौंदर्य का परमोत्कर्ष देखे। उपवास और नग्नता में भी सौंदर्य का अस्तित्व संभव है, इसे कदाचित् वह संभव नहीं समझता। उसके लिये सौंदर्य सुन्दर स्त्री है—उस बच्चों वाली गरीब रूप-रहित स्त्री में नहीं जो बच्चे को खेत की मेड़ पर सुलाये पसीना बहा रही है, उसने निश्चय कर लिया है कि रंगे होठों, कपोलों और भौहों में निःसन्देह सुन्दरता का वास है—उसके उलझे हुये बालों और पपड़ियां पड़े हुये होठों और कुम्हलाये गालों में सौंदर्य का प्रवेश कहां?

कुछ गुण

"पर यह संकीर्ण दृष्टि का दोष है। अगर उसकी सौंदर्य देखनेवाली दृष्टि में विस्तृति आ जाय तो वह देखेगा कि रंग होठों और कपोलों की आड़ में अगर रूप गर्व और निष्ठुरता छिपी है, तो इन मुरझाये हुए होठों और कुम्हलाये हुए गालों के आंसुओं में त्याग, श्रद्धा और कष्ट सहिष्णुता है। हां उसमें नफ़ासत नहीं, दिखावा नहीं, सुकुमारता नहीं।

जवानी क्या है?

"हमारी कला यौवन के प्रेम में पागल है और यह नहीं जानती कि जवानी छाती पर हाथ रखकर कविता पढ़ने, नायिका